विज्ञान गरिमा

सिंधु

अंक: 74

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक 74
जुलाई–सितंबर, 2010

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

4954 HRD/10—1 A

'विज्ञान गरिमा सिंधु' पत्रिका एक त्रैमासिक है। पत्रिका का उद्देश्य है– हिंदी के माध्यम से विश्वविद्यालयी छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक सहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित सामाजिक विषय होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें।
6. लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें।
7. लेख में प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
8. श्वेत–श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
9. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
10. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है।
11. अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट–लगा लिफाफ साथ न भेजें।
12. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रूपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रूपए और अधिकतम राशि 1000 रूपए है।
13. भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
14. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    श्री अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066
15. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट : **www.cstt.nic.in**
कापीराइट © 2010
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली– 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054

4954 HRD/10—1 B

विज्ञान गरिमा सिंधु

प्रधान संपादक

प्रो. के. बिजय कुमार

अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादक

श्री अशोक सेलवटकर

वैज्ञानिक अधिकारी

विशेष सहयोग

डॉ. राजेंद्र गौतम

श्री डी.पी. मिश्रा

प्रकाशन

डा. पी.एन. शुक्ल

सहायक निदेशक

श्री आलोक वाही

कलाकार

श्री कर्मचंद शर्मा

प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण

श्री एम. के. भारल

वैज्ञानिक अधिकारी

संपादकीय

विज्ञान गरिमा सिंधु के प्रस्तुत अंक में मूलभूत विज्ञान संबंधी दो लेखों 'वर्णलेखिकी' और 'प्रचक्रण इलेक्ट्रॉनिकी' में लेखकद्वय ने बहुत ही ज्ञानवर्धक सामग्री प्रस्तुत की है जो अवसरानुकूल भी है। देश में घटती हुई कृषि–उपज की दृष्टि में कुछ अनुकूल लेख इसमें शामिल किए गए हैं। जहाँ डॉ. दिनेश मणि के लेख में मिट्टी में घटते जैविक कार्बन की स्थिति से अवगत कराया गया है, वहीं बंजर भूमि का सुधार एवं प्रबंधन, उच्च कोटि के बीजों की प्राप्ति, अखाद्य तेल बीजों का आर्थिक महत्व, बोनसाई पौधे उगाना, योजना आदि कृषि–संबंधी लेख पठनीय हैं। हमारी पत्रिका को आयुर्विज्ञान संबंधी रोचक लेख भेजते रहने वाले डॉ. जे.एल. अग्रवाल का लेख 'सिरदर्द : गंभीर रोगों का सूचक' शीर्षक आलेख भी पाठकों को इस ओर सजग करेगा।

हमें पूरी आशा है कि वे हमारे पाठक–व लेखक हमें इस पत्रिका के लिए ज्ञानवर्धक वैज्ञानिक लेख और साथ ही अपनी प्रतिक्रियाएं भी भेजते रहेंगे।

(प्रो. के. बिजयकुमार)
प्रधान संपादक

नई दिल्ली
सितंबर, 2010

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक–74, अप्रैल–जून 2010

प्रधान संपादक
प्रो. के. विजय कुमार
अध्यक्ष

संपादक
अशोक सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

विशेष सहयोग
डॉ. राजेंद्र गौतम
श्री डी.पी. मिश्रा

प्रकाशन/मुद्रण व्यवस्था
डा.पी.एन. शुक्ल
सहायक निदेशक

श्री आलोक वाही
कलाकार

श्री कर्मचंद शर्मा
प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण
श्री एम.के. भारल
वैज्ञानिक अधिकारी

संपर्क सूत्र
संपादक
विज्ञान गरिमा सिंधु
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड–7
आर. के. पुरम, नई
दिल्ली–110066

अनुक्रम **पृ. सं.**

1. वर्ण लेखिकी	*डॉ. ए. के. चतुर्वेदी*	1
2. मिट्टी में घटता जैविक कार्बन : समुचित उपाय जरूरी	*डॉ. दिनेश मणि*	5
3. खनिज एवं खननः इतिहास के पन्नों से	*डॉ. विजय कुमार उपाध्याय*	10
4. बंजर भूमि : सुधार एवं प्रबंधन	*डॉ. वीरेन्द्र कुमार*	16
5. प्रचक्रण इलेक्ट्रॉनिकी	*डॉ. पुरुषोत्तम पोद्दार*	25
6. उच्च कोटि के बीज और उनकी प्राप्ति	*डॉ. शंकर लाल*	27
7. अखाद्य तेल बीजों से आर्थिक समृद्धि	*डॉ. एन. के. बौहरा*	29
8. बोनसाई पौधे : एक परिचय	*आर. एस. सेंगर, रेशू चौधरी*	33
9. सिरदर्द : गंभीर रोगों का सूचक	*डॉ. जे.एल. अग्रवाल*	37
10. सोंजना	*प्रवीर कुमार मुखर्जी*	40

परिशिष्ट

लेखक–परिचय	41
आयोग के प्रकाशन	44
ग्राहक फार्म	48
बिक्री संबंधी नियम	49
प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची	50

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। यह पत्रिका 'वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग' द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को बढ़ावा देने के लिए प्रकाशित की जाती है।

1

वर्ण लेखिकी

डॉ. ए. के. चतुर्वेदी*

वर्णलेखिकी, पृथकन की एक नई तथा बिल्कुल ही अलग विधि है जिसके खोजकर्त्ता एम.एस. स्वीट हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलित पृथकन की क्रिस्टलन विधि से यह पूर्णतः भिन्न है। स्वीट ने पौधों से वर्णकों को अलग कर उन्हें परस्पर पृथक भी किया। स्वीट का कार्य महत्वपूर्ण होते हुए भी उसे मान्यता तीन दशक के बाद ही मिली। इसका कारण यह भी था कि स्वीट का कार्य रूसी भाषा में था। ऐसा माना जाता था कि क्रिस्टलन के अतिरिक्त अन्य विधि से शुद्ध पदार्थ प्राप्त नहीं किए जा सकते।

1903 में "बायोलॉजिकल सेक्शन ऑफ दि वारसा सोसाइटी ऑफ नेचुरल साइन्टिस्ट" के सम्मुख इस नई विधि को दर्शाया गया। वर्णक्रम में प्रकाश की किरणों की भांति, वर्णक मिश्रण में उपस्थित विभिन्न संघटक, कैल्सियम कार्बोनेट के स्तंभ पर पृथक किए जा सकते हैं। तत्पश्चात, उनका गुणात्मक एवं मात्रात्मक निर्धारण भी किया जा सकता है। इस स्तंभ को वर्णलेख (क्रोमेटोग्राम) तथा इस तकनीक को वर्णलेखिकी (क्रोमेटोग्राफी) नाम दिया गया।

स्वीट के अनुसार केवल ध्रुवीय विलायक ही क्लोरोफिल को पौधों से अलग कर पाते हैं जबकि पृथक किया गया क्लोरोफिल सरलता से अध्रुवीय विलायक में घुल जाता है। प्रारंभिक कार्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पौधों में वर्णक, अधिशोषण मिश्रण के रूप में उपस्थित रहते हैं। अध्रुवीय विलयन द्वारा अधिशोषित बलों का विघटन नहीं हो पाता। स्वीट द्वारा आविष्कृत इस पृथकन विधि का आधार, अधिशोषण, अवक्षेपण तथा निष्कर्षण था। अंततः वर्णलेखन की नई विधि प्रचलित हुई जो तंत्र में अधिशोषण और विशोषण पर आधारित थी।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में घटी कुछ घटनाओं के कारण इस नई तकनीक को मान्यता मिली। "हैडेलवर्ग काइसक विल्हेल्म इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल रिसर्च" में इदगर लेडरर ने वर्णलेखिकी विधि का उपयोग अंडे की जर्दी में उपस्थित विभिन्न जैंथोफिलों के अध्ययन में किया। इस विधि को यूरोप में भी अपनाया गया और इसकी सहायता से कई प्राकृतिक पदार्थों का विश्लेषण किया गया। इतना ही नहीं, पृथकन की इस विधि को क्रिस्टलन से अच्छा माना गया। रसायन और जैव रसायन में पृथकन और विश्लेषण के लिए इस विधि का प्रचुरता से प्रयोग किया जा रहा है।

स्वीट द्वारा प्रयोग की गई वर्णलेखन की विधि अधिशोषण पर आधारित थी, इस कारण इसे अधिशोषण वर्णलेखिकी भी कहते हैं। इस विधि का प्रयोग प्रारंभ में केवल रंगीन पदार्थों को पृथक करने के लिए किया गया था परंतु आजकल इसका प्रयोग रंगीन, रंगहीन तथा अल्प मात्रा में पदार्थों को पृथक करने के लिए किया जा रहा है। प्रयोग के लिए 50 सेमी. लंबी व 4 सेमी. चौड़ी एक नली ली जाती है। इसके बाद इसे तीन चौथाई तक महीन पिसा सिलिका जेल, कैल्सियम कार्बोनेट तथा शर्करा द्वारा भर दिया जाता है। अब इसमें विलायक डालते हैं ताकि बीच में फंसी वायु निकल जाए और अधिशोषण एक संहत (कम्पेक्ट) परत के रूप में रहे। हवा की उपस्थिति में अधिशोषण भली प्रकार नहीं हो पाएगा। अब मिश्रण के विलयन को इस स्तंभ में डाला जाता है। चूंकि अधिशोषण स्थिर प्रावस्था में ही होता है जो कि एक स्तंभ में ही संभव है अतः इसे स्तंभ वर्णलेखिकी (column chromatography) भी कहते हैं।

अधिशोष्य में नियत आमाप के छिद्र होते हैं और विभिन्न पदार्थों के कणों का आमाप भी नियत होता है। सबसे पहले न्यूनतम आमाप के पदार्थ अधिशोषित होते हैं। इसके उपरांत अपेक्षाकृत कुछ बड़े आमाप के पदार्थ अधिशोषित होते हैं। अर्थात् जैसे–जैसे आमाप बढ़ता जाता है वैसे–वैसे पदार्थ नीचे की ओर अधिशोषित होते जाते हैं। यह भी संभव है कि अधिक आमाप वाले पदार्थ का अधिशोषण बिल्कुल ही न हो। इस प्रकार मिश्रण से पदार्थ अलग–अलग हो जाते हैं और फिर विलायक डालते हैं जिससे सीमाएं स्पष्ट और नियत हो जाती हैं। चूंकि पदार्थ रंगीन होते हैं अतः थोड़ी–थोड़ी दूरी पर बैंड बन जाते हैं। तत्पश्चात नीचे से छड़ लगाकर स्तंभ को ऊपर उठाते हैं और पदार्थ युक्त स्तंभ को चाकू से काट लेते हैं और उसे अलग एकत्र कर लेते हैं। इसे उपयुक्त विलायक में घोलकर शुद्ध रूप से प्राप्त कर लेते हैं। ध्यान रहे कि विलायक में केवल पदार्थ ही घुलें। यह विधि सबसे पुरानी है।

कैम्ब्रिज की जैव रसायन प्रयोगशाला में पीएच.डी. का शोधकार्य कर रहे आर.एल. सिंजे को ऊन में उपस्थित मोनो कार्बोक्सिलिक अम्लों को पृथक करने के लिए ए.पी.एच. मार्टिन से परामर्श लेने को कहा गया। इसके लिए छिद्रित संस्टर युक्त विपरीत प्रवाह वाली मशीन बनाई गई। कार्बोक्सिलिक अम्लों को क्लोरोफार्म एवं जल के मध्य विभाजित करके पृथक किया गया। पृथक करने में बहुत समय लगा। इसके अतिरिक्त क्लोरोफार्म के साथ अधिक समय तक काम करना पड़ता था तथा मशीन को भी निरंतर समंजित करना पड़ता था। इन समस्याओं के समाधान के लिए ऊन तथा रुई को कांच की नली में भरा गया और फिर क्लोरोफार्म को ऊपर से तथा जल को नीचे से प्रवाहित किया गया। परंतु, संतोषजनक परिणाम प्राप्त नहीं हुए। तब, मार्टिन के मन में विचार आया कि क्यों न एक द्रव को स्थिर और दूसरे द्रव को गतिशील रखा जाए। 5 प्रतिशत ऐल्कोहॉल युक्त क्लोरोफार्म को गतिशील प्रावस्था में तथा सिलिका जेल पर जल की परत को स्थिर प्रावस्था में प्रयोग करके ऊन में उपस्थित मोनो कार्बोक्सिलिक अम्लों का पृथकन किया गया। नमूने में उपस्थित संघटकों का स्थिर प्रावस्था के प्रति विभिन्न वितरण गुणांक होने के कारण संघटक पृथक हो गए।

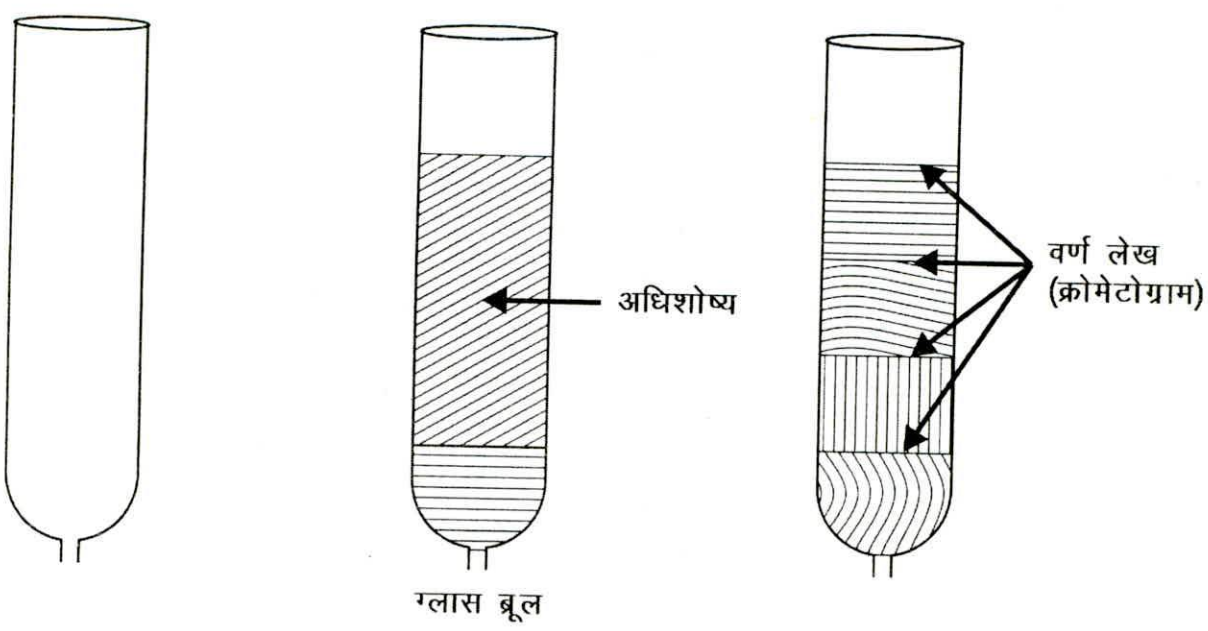

इस विधि को विभाजन वर्णलेखिकी कहा गया।

मार्टिन तथा सिंजे ने डाइऐमीनो कार्बोक्सिलिक अम्लों को पृथक करने के लिए उपर्युक्त विधि का प्रयोग कर स्थिर प्रावस्था के रूप में अधिशोषित किया। दूसरी वैकल्पिक स्थिर प्रावस्था के लिए फिल्टर पेपर का प्रयोग किया गया। प्रयोग सफल रहा और इसे पेपर वर्णलेखिकी नाम दिया गया। मार्टिन ने ए.एच. गोडीन तथा कंसडेन के साथ पेपर वर्णलेखिकी का विस्तृत प्रयोग किया। इस विधि द्वारा कम मात्रा का कम समय में विश्लेषण संभव होने के कारण इसका यथेष्ट प्रयोग हुआ।

1938 में "फार्मेसिटिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ खारकोव" में एन.ए. इजमाइलोव और श्राइबर ने पेपर के स्थान पर ग्लास प्लेट पर अधिशोष्य की एक पतली परत को लंबाई में लगाया। नमूने की एक बूंद को अधिशोष्य पर डाला और विलायक को बूंद–बूंद डाल कर वर्ण लेख विकसित किया। इसे बिंदु वर्णलेखिकी कहा गया। 1951 में अमरीकी कृषि वैज्ञानिक किर्चनर ने सगंध तेलों में उपस्थित टरपीनों को पृथक् करने के लिए ग्लास प्लेट पर सिलिसिक अम्ल की परत का प्रयोग किया। वैज्ञानिक इगान हॉल ने इस प्रकार की वर्णलेखिकी का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया और इसे पतली परत वर्णलेखिकी नाम दिया।

1950 में वसीय अम्लों को पृथक् करने के लिए मार्टिन के सहकर्मी ए.टी. जेम्स ने गतिशील प्रावस्था के रूप में द्रव के स्थान पर गैस का प्रयोग कर वसीय अम्लों का सफल पृथकन किया और इस तकनीक को गैस वर्णलेखिकी नाम दिया गया जिसकी सहायता से पेट्रोरसायनों और वाष्पीय पदार्थों का सुग्राही विश्लेषण संभव हुआ। अकार्बनिक जियोलाइट का स्थिर प्रावस्था के रूप में प्रयोग टेलर और यूरे ने पहली बार लीथियम और पोटैशियम के समस्थानिकों को पृथक करने के लिए आयन विनिमय वर्णलेखिकी का उपयोग किया। संश्लिष्ट आयन विनिमय वेजिन का उपयोग ओलॉक सेम्यूलसन ने बाधाकारों ऋणायनों तथा धनायनों को पृथक् करने में किया। बर्केलियम से रोबोलियम तक के तत्वों को पृथक् करने में आयन विनिमय वर्णलेखिकी का विशेष योगदान है।

वाष्पीय कार्बनिक पदार्थों के विश्लेषण के लिए गैस वर्णलेखिकी और द्रव वर्णलेखिकी प्रचलित थी। परंतु, अकार्बनिक आयनों के विश्लेषण के लिए अनुमापमिति, वर्णमिति, तथा भारमिति-जैसी परंपरागत विधियों का प्रयोग होता था जो कम सुग्राही, अवरणात्मक तथा अधिक समय लेने वाली होती थी। आधुनिक आयन विनिमय विधि द्वारा आयनों का सफल पृथकन संभव हुआ है। पराबैंगनी विकिरण के लिए पारदर्शी आयनों का सुग्राही अभिनिर्धारण कठिन होता है। स्टीबेन्स और बाडमेन ने पृथक किए गए आयनों का अभिनिर्धारण, विद्युत् चालकता द्वारा किया। आयनों के सुग्राही अभिनिर्धारण में पृष्ठभूमिक चालकता के कारण बाधा उत्पन्न होती है। साधारणतः पृष्ठभूमिक चालकता का शोर स्तर, सिगनल के अनुपात में अधिक होता है। इसके अतिरिक्त रेजिन का विसरण पथ भी लंबा होता है। इस कारण वर्णलेख में एनालाइट आयन का शीर्ष, अधिक विस्तृत हो जाता है जिससे सुग्राहिता कम हो जाती है। लंबे विनिमय पथ को कम करने के लिए विशेष प्रकार की रेजिन का प्रयोग किया गया। पृष्ठभूमिक चालकता को कम करने के लिए विश्लेषणात्मक स्तंभ के बाद एक संदमनक स्तंभ लगाया गया जिसका कार्य चालक की चालकता को कम करना था। आयन वर्णलेखिकी एक महत्वपूर्ण तकनीक है तथा आयन युग्म और आयन अपवर्जन के प्रयोग से वैश्लेषिक रसायन के क्षेत्र में इसकी उपयोगिता में वृद्धि हुई है।

जेल निस्पंदन वर्णलेखिकी में स्थिर प्रावस्था द्रवरागी जेल होती है। इस तकनीक का आविष्कार 1959 में उप्पसल विश्वविद्यालय के जैवरसायन विभाग में फारमेसिया कंपनी के सहयोग से पैरफ्लोडिन और जरकर ओ पोर्थ ने किया था। इसका उपयोग बड़े आकार के अणुओं के पृथकन में किया जाता है। जेल पारगमन वर्णलेखिकी में स्थिर प्रावस्था जल विरागी होती है। दोनों शाखाओं का संयुक्त नाम आमाप अपवर्जन वर्णलेखिकी है।

1960 में गैस–द्रव वितरण वर्णलेखिकी का विकास हो चुका था परंतु अधिकांश विश्लेषण परंपरागत द्रव वर्णलेखिकी द्वारा ही सम्पन्न होते थे। गैसों की तुलना

में द्रवों में विसरण चार गुना धीमा होता है। अतः पृथकन में सुधार के लिए यह आवश्यक है कि स्तंभ में प्रयोग होने वाले रेजिन के कण छोटे और समान आमाप के होने चाहिए तथा विसरण पथ भी छोटा होना चाहिए। 1965 में होरबाम ने एक आधुनिक द्रव वर्णलेखिकी यंत्र बनाया और इस नई विधि को उच्च निष्पादन द्रव वर्णलेखिकी नाम दिया गया। इस विधि को व्यावहारिक बनाने के लिए होरबाय ने पेल्लीकुलर रेजिन का निर्माण किया और जिसे व्यावसायिक रूप में ड्यूपॉन्ट ने उपलब्ध कराया।

अति क्रांतिक तरन में विसरण की गति द्रवों में अधिक तथा गैसों में कम होती है। पृथकन कम ताप पर भी संभव है। जिन अवाष्पीय यौगिकों का विश्लेषण गैस वर्णलेखिकी द्वारा संभव नहीं होता उनका विश्लेषण अतिक्रांतिक तरल वर्णलेखिकी द्वारा किया जाता है। गतिशील प्रावस्था के रूप में अतिक्रांतिक तरल का प्रयोग किया जाता है। ई. लेस्पर, एम.एन. मयेरस और जे.सी. गिडिंग्स ने इस विधि को विकसित किया परंतु इसका उपयोग विशेष अवस्थाओं में ही किया जाता है।

एल्फा, बीटा, गामा, ग्लोबुलिन से रुधिर प्लाज्मा प्रोटीन का पृथकन विद्युतकण संचलन विधि द्वारा किया गया। जेस्टेन ने 1967 में 300 माइक्रोमीटर की कांच नली का प्रयोग करके ऋणायनों तथा धनायनों का पृथकन किया। इस विधि को कोशिका विद्युतकण संचलन वर्णलेखिकी नाम दिया गया। जेम्स जोर गैनसन और लुकास ने इस विधि से लोकप्रिय बनाना। 1989 में तरल सिलिका कोशिका और सादा बफर का प्रयोग करके इस विधि की विभेदन क्षमता को दर्शाया गया।

स्वीट की मौलिक वर्णलेखिकी की संकल्पना का विस्तृत प्रयोग हुआ। वर्तमान में वर्णलेखिकी का प्रयोग जैवरसायन, जैविकी तथा अन्य प्रौद्योगिकियों के क्षेत्र में विश्लेषण कार्य के लिए प्रचुरता से प्रयोग हो रहा है।

o o o

प्रागैतिहासिक जीवाणु बताएगा वातावरण के राज

26 करोड़ 80 लाख वर्ष पुराने जीवाणु पृथ्वी पर वातावरण के बदलाव का राज खोलेंगे। ऑस्ट्रेलिया के डेकिन विश्वविद्यालय की एक टीम को वॉलांगांग के समुद्री तटों से इस प्रागैतिहासिक जीवाणु के जीवाश्म मिले हैं। गुआंग शी ने बताया कि उन्हें समुद्री तटों पर दूसरे जीवाश्म की खोज के दौरान अनायास ही ये प्राचीन जीवाणु मिल गए। अध्ययन दल में शामिल यी मिंग इसे चीन ले गए। वहाँ उन्होंने प्रयोगशाला में लंबे परीक्षण और अध्ययन के बाद जीवाणुओं के जीवाश्म की आयु का पता लगाया। गुआंग शी ने बताया कि माइक्रोस्कोप से निरीक्षण में पाया गया कि जीवाणु के जीवाश्म अंगूर के गुच्छे के जैसे गुंथे हुए हैं। पत्थर के विभिन्न स्तरों से चिपके जीवाश्मों में दो अलग तरह के जीवाणु पाए गए हैं। इनसे पता चल सकेगा कि वातावरण में बदलाव के विभिन्न चरणों को जीवों ने किस तरह सहन किया। पत्थर के अलग–अलग स्तरों पर मिले जीवाश्म, निश्चित तौर पर दो अलग समय के जीवाश्म हैं।

गर्मी और ठंड के दौरान जीवों को खुद में क्या–क्या बदलाव करने पड़े, जीवाश्म इसका भेद खोलेंगे।

दीपक कोहली

2

मिट्टी में घटता जैविक कार्बन : समुचित उपाय जरूरी

डॉ. दिनेश मणि*

जैव–पदार्थ, किसी भी मृदा की गुणवत्ता के मूल्यांकन का केंद्र बिंदु है क्योंकि यह मृदा के अनेक गुणों जैसे–धनायन (पॉजीटिव) विनिमय क्षमता, सूक्ष्मजीवीय सक्रियता, आभासी घनत्व, जलधारण क्षमता इत्यादि को प्रभावित करता है। हरित क्रांति के पहले हमारी खेती योग्य भूमि में 4 से 5 प्रतिशत जैविक कार्बन पाया जाता था जो आज घट कर 0.4–0.5 प्रतिशत रह गया है। यह भविष्य की खेती के लिए शुभ संकेत है। जैविक खादों (कार्बनिक खादों) के सीमित इस्तेमाल और रासायनिक उर्वरकों के बढ़ते प्रयोग से मिट्टी का स्वास्थ्य लगातार खराब होता जा रहा है। मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता में कमी आ रही है जिसके परिणामस्वरूप टिकाऊ खेती पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अतः यदि खेती को टिकाऊ बनाना है तो किसानों को अपने खेतों में जैविक खादों का अधिकाधिक प्रयोग करने की आवश्यकता है क्योंकि जैविक खादों का कोई विकल्प नहीं है।

आजकल यह अनुभव किया जा रहा है कि रासायनिक उर्वरकों के लगातार इस्तेमाल से मिट्टी की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में जैविक खादों के इस्तेमाल की सिफारिश पुनः की जा रही है। क्योंकि जैविक खादों के प्रयोग से मिट्टी की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं के साथ–साथ इसकी उपजाऊ शक्ति को दीर्घकाल तक कायम रख सकते हैं।

वास्तव में प्राकृतिक रूप से उत्पादित वे समस्त जैव–पदार्थ जो प्रायः वनस्पतियों तथा जीव–जंतुओं के अवशेषों के सड़ने–गलने के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं और खेतों में मिलाए जाने पर उसकी उपजाऊ शक्ति को बढ़ाते हैं, जैविक–खादों के नाम से जाने जाते हैं। जैविक खादों के अंतर्गत गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, खली की खाद, वर्मीकम्पोस्ट, हड्डियों से निर्मित खाद इत्यादि आते हैं। इन खादों की विशेषता यह है कि इनके प्रयोग से मिट्टी एवं फसलों को कोई नुकसान नहीं पहुँचता है। इन खादों की सबसे अच्छी बात यह है कि इनमें फसलों की वृद्धि के लिए आवश्यक समस्त मुख्य, गौड़ एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों के अलावा मृदा–एन्जाइम एन्टीबायोटिक जैसे पदार्थ भी पाए जाते हैं जो मिट्टी की उर्वरता एवं उत्पादकता को टिकाऊ रखने में सहायक होते हैं। यह बात सही है कि जैविक खादें आज की अधिक पैदावार देने वाली किस्मों की पोषक तत्वों की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकतीं। उनसे अधिक पैदावार के लिए रासायनिक उर्वरक तो डालने ही पड़ेंगे परंतु दोनों प्रकार की चीजों का उपयोग करके हम भूमि की उपजाऊ शक्ति को लंबे समय तक कायम रख सकते हैं।

जैविक खादों के प्रयोग से मिट्टी के भौतिक गुणों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यदि मिट्टी में जैविक पदार्थ प्रचुर मात्रा में हैं तथा उनके विघटन की दर अच्छी है तो मिट्टी का रंग हल्का काला–भूरा दिखाई देगा। मिट्टी में पाए जाने वाले जैविक पदार्थों की वजह से मिट्टी के कण आपस में बंधे रहते हैं तथा उसमें वायु एवं जल के संचार व धारण की क्षमता बढ़ जाती है। साथ ही जैविक खादों के कारण पोषक तत्वों के खेत से क्षरण नहीं होने पाता है और ये पौधों को अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता

के लिए मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन चाहिए जो जैविक खादों द्वारा मिट्टी की भौतिक दशा अच्छी होने के फलस्वरूप उपलब्ध हो जाती है। सूक्ष्मजीवों की संख्या में भी वृद्धि हो जाती है जिससे पौधों की जड़ों का विकास भी अच्छा होता है।

जैविक खादों के इस्तेमाल से न सिर्फ मिट्टी के भौतिक गुणों में सुधार आता है बल्कि उसके रासायनिक गुणों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। जैविक खादों के प्रयोग से मिट्टी में कार्बनिक कोलायड की मात्रा में वृद्धि हो जाती है जो पोषक तत्वों को बांधकर रखता है और उन्हें बहकर नष्ट होने से बचाने के साथ–साथ पौधों को आसानी से उपलब्ध कराता है। जैविक खादों से दूसरा लाभ मिट्टी के pH (पी.एच) में सुधार होना है। जो मिट्टी ऊसर या क्षारीय है वहाँ पर हरी खाद या अन्य जैविक खादों के प्रयोग से उसके pH में कमी लाई जा सकती है क्योंकि जैविक पदार्थों के विघटन के दौरान विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्लों का निर्माण होता रहता है जो क्षारीय एवं ऊसर मिट्टी के pH मान को कम करके उनको सुधारते रहते हैं।

जैविक खादें मिट्टी की भौतिक एवं रासायनिक दशाओं में सुधार के अलावा मिट्टी में पाए जाने वाले सभी तरह के सूक्ष्मजीवों एवं केंचुओं के लिए भोजन का भी कार्य करती हैं जिससे उनकी संख्या एवं क्रियाशीलता में वृद्धि के कारण मिट्टी में जैव पदार्थों के विघटन की दर बढ़ जाती है। मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं क्रियाशीलता में वृद्धि से जैविक नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की उपलब्धता में भी वृद्धि हो जाती है जिससे फसलों की उत्पादकता एवं मिट्टी के स्वास्थ्य में टिकाऊपन बढ़ जाता है। किसी भी अनुपजाऊ मिट्टी में जैविक खादों के प्रयोग से उसको उपजाऊ बनाया जा सकता है। कुछ समस्याग्रस्त मृदाओं, जैसे ऊसर, क्षारीय, पथरीली एवं रेतीली भूमि में लगातार जैविक खादों के इस्तेमाल से उनकी उर्वरता एवं उत्पादकता में भारी वृद्धि की जा सकती है।

जैविक खाद का विशिष्ट गुण अधिकांशतः उसकी कार्बन–सामग्री या ह्यूमस पर निर्भर करता है। इस खाद के प्रयोग से मिट्टी की रचना में सुधार होने से उसके अन्य गुणधर्मों में भी सुधार हो जाता है। यह मिट्टी के तापमान को नियमित करती है जिससे मिट्टी अत्यधिक गर्म और अत्यधिक ठंडी नहीं हो पाती। इससे मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ने के साथ साथ मिट्टी की आयन अधिशोषण और आयन विनिमय क्षमताओं में भी सुधार होता है। मिट्टी की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाती है। जैविक खादों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके अवशिष्ट प्रभाव खेतों में कई वर्षों तक पाए जाते हैं। जैविक खादें अपने गुणधर्मों के कारण खेत में ऐसी अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर देती हैं जिनसे रासायनिक उर्वरकों को सफलतापूर्वक काम में लाया जा सकता है। भूमि में फाइटोहार्मोन या पेड़–पौधों को वृद्धि रखने वाले पदार्थों इन्डोल एसीटिक एसिड तथा क्रिएटीनाइन की उपस्थिति या उत्पादन का श्रेय भी जैविक खादों को दिया जाता है।

मृदा में सभी जैव तत्व–जीवित या मृत, ताजे या अपघटित, सरल या सम्मिश्र यौगिक, मृदा जैव पदार्थ के भाग होते हैं। इसमें पौधे की जड़ें, प्राणी और पौधों के उपघटन की सभी अवस्थाओं में पाए जाने वाले अवशेष, ह्यूमस और सूक्ष्मजीव तथा जैव यौगिक सम्मिलित किए जाते हैं। ह्यूमसीकरण से हमारा तात्पर्य जैव पदार्थों के आंशिक अपघटन की प्रक्रिया और ह्यूमस के विशिष्ट कुछ यौगिकों के संश्लेषण से है। ह्यूमसीकरण के दौरान आसानी से अपघटित हो जाने वाले कुछ घटक ऑक्सीजन होकर जल, कार्बनडाइऑक्साइड और अन्य गैसों के रूप में समाप्त हो जाते हैं। कुछ खनिज निक्षालित (leach) हो जाते हैं। ह्यूमसीकरण के एक वर्ष पश्चात् जैव पदार्थ के मूल शुष्क भार का केवल एक अंश ही शेष बचता है। इसका संघटन वस्तुतः बदल जाता है। सामान्यतः मूल पदार्थ की अपेक्षा खनिजों एवं नाइट्रोजन का प्रतिशत बहुत अधिक और कार्बन की मात्रा कुछ अधिक हो जाती है लेकिन ऑक्सीजन और हाइड्रोजन दोनों की मात्राएं घट जाती हैं।

मोटे तौर पर ह्यूमसीकरण को स्थलीय, अर्धस्थलीय और जलीय समूहों में विभाजित किया जा सकता है। उनमें सुलभ पादप–सामग्री की मात्रा और प्रकार तथा अपघटन की दर और प्रकार आदि की दृष्टि से भिन्नताएं

पाई जाती हैं। ये सभी मृदा में वायु और जल की आपेक्षिक मात्राओं से प्रभावित होते हैं। अधिकांश कृषि मृदाओं में पाए जाने वाले ह्यूमस स्थलीय मूल का होता है। ह्यूमसीकरण की दर को तापमान, नमी और ऑक्सीजन आपूर्ति आदि कारक प्रभावित करते हैं। अतः जलवायु और स्थलाकृति का ह्यूमस के निर्माण तथा प्रकार पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। गर्म और शुष्क जलवायु में पादप वृद्धि बहुत कम और अपघटन की दर तीव्र होने के कारण मृदा में व्यावहारिक ह्यूमस नहीं पाया जाता है। यद्पि किसी क्षेत्र में उगने वाले पौधे, वहां की जलवायु एवं मृदा के परिणाम होते हैं, तथापि इन पौधों का उत्पन्न होने वाले ह्यूमस पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में उल्लेखनीय है कि पौधों की जड़ों का विस्तार पौधों में लिग्निन की मात्रा आदि का ह्यूमस निर्माण पर प्रभाव पड़ता है।

ह्यूमस के सबसे महत्वपूर्ण घटक एमीनो अम्ल लिग्निन की तरह से पदार्थ के जटिल यौगिक होते हैं। वैक्समैन ने इसे लिग्नो–प्रोटीन सम्मिश्र नाम दिया। लेकिन लिग्नो प्रोटीन की केवल अल्प मात्राओं को ही ह्यूमस में पहचाना जा सकता है। फिर भी सामान्यतः यह माना जाता है कि ह्यूमस में पाया जाने वाला एमीनो अम्ल– लिग्निन की तरह का सम्मिश्र, पादप पदार्थों के प्रोटीन और लिग्निन से उत्पन्न होता है। ह्यूमस में पाए जाने वाले अन्य यौगिकों में कार्बोहाइड्रेट, सेलुलोज, हेमीसेलुलोज तथा वसा, मोम और रेजिन प्रमुख हैं। ह्यूमस का एक निकटस्थ रासायनिक संघटन इस प्रकार है–

सारणी–1: ह्यूमस का रासायनिक संघटन

घटक	प्रतिशत
लिग्निन–सम–यौगिक	45%
एमीनो अम्ल	35%
कार्बोहाइड्रेट	15%
सेलुलोज	4%
हेमीसेलुलोज	7%
वसा, मॉस और रेजिन	3%
अन्य पदार्थ	6%

सारणी–2: खनिज मृदाओं में पाए जाने वाले ह्यूमस का एक विशिष्ट तत्वीय संघटन

तत्व	भार प्रतिशत
कार्बन	52–60%
ऑक्सीजन	32–38%
हाइड्रोजन	3–4%
नाइट्रोजन	4–5%
फॉस्फोरस	0.4–0.6%
वसा, मॉस और रेजिन	3%
गंधक	0.4–0.6%

सामान्य मृदा का कार्बन नाइट्रोजन अनुपात लगभग 10:1 होता है। अनेक स्थानों में पृष्ठ मृदा (surface soil) के अंतर्गत ह्यूमस के लिए यह विशिष्ट अनुपात है। पृष्ठ मृदा की अपेक्षा अवमृदा में कार्बन नाइट्रोजन अनुपात अधिक होता है। अपरिष्कृत ह्यूमस में विशेषकर ठंडी जलवायु के अंतर्गत कार्बन नाइट्रोजन अनुपात बहुत व्यापक होता है। ह्यूमस की धनायन विनिमय क्षमता उच्च (200 से 400 मिली तुल्यांक प्रति 100 ग्राम) होती है। धनायनों से अभिक्रिया करने की इसकी क्षमता के कारण, ह्यूमस को दुर्बलता से वियोजित एक अम्ल की भांति कार्य करने वाला माना जा सकता है। ह्यूमस ऋणायनों को भी अवशोषित करता है लेकिन यह अकार्बनिक मृदा कोलाइडों की अपेक्षा अधिक आसानी से फॉस्फेटों को निर्मुक्त करता है। इसलिए मृदा अभिक्रिया का स्तर (pH मान) अकार्बनिक मृदाओं में पादप वृद्धि के लिए इतना महत्वपूर्ण नहीं होता जितना खनिज मृदाओं में होता है। कैल्शियम ह्यूमेट व्यावहारिक रूप से अविलेय (insoluble) होता है और चिकनी मिट्टी (क्ले) के साथ जलस्थाई सम्मिश्रणों का निर्माण करता है। हाइड्रोजन ह्यूमेट भी बहुत थोड़ा विलेय होता है लेकिन यह आसानी से बिखर जाता है और इस दशा में मृदा की दरारों में चला जाता है। सोडियम ह्यूमेट और अमोनियम ह्यूमेट काफी हद तक जलविलेय होते हैं। काली क्षारीय मृदाओं का रंग सोडियम ह्यूमेट की विलेयता के कारण होता है। ह्यूमस का घनत्व 1.3 से 1.5 के बीच होता है। ह्यूमस के भीगने की ऊष्मा 20 से 40 कैलोरी प्रतिग्राम होती है। भींगने पर ह्यूमस फूलता है और अपने भार के 2 से 6 गुना तक जल अवशोषित करता है। लेकिन जब ह्यूमस अच्छी तरह सूख जाता है तो रंध्र के बारीकपन के कारण तथा जल प्रतिकर्षी (repellant) तेलों, मोम और रेजिन की उपस्थिति के कारण इसका पुनः भीगना कठिन होता है अर्थात क्ले के पुनः जलयोजन के विपरीत ह्यूमस का पुनः जलयोजन कठिन होता है और यह मंद गति से होने वाली एक व्युत्क्रमी (inverse) अभिक्रिया है।

विभिन्न प्रकार की वनस्पति और पारिस्थितिक दशाओं के आधार पर कई प्रकार के ह्यूमस बन जाते हैं। अपरिष्कृत ह्यूमस जैव अवशेषों की उस अवस्था को कहते हैं जिसमें इनका उपघटन न्यून खनिज मात्रा, न्यून तापमान, अपर्याप्त वातन, फिनोलिक या अन्य यौगिकों की उपस्थिति से बाधित हो जाता है। अपरिष्कृत ह्यूमस में पादप रेशे तब भी पहचाने जाने की स्थिति में होते हैं। इस प्रकार रंग काले की अपेक्षा भूरा अधिक होता है। वास्तविक ह्यूमस के विकास की प्रथम अवस्था पोषक ह्यूमस है। इसकी संरचना लगभग अवशेषों और वास्तविक ह्यूमस के बीच की होती है। अर्थात् पोषक ह्यूमस में शर्करा, स्टार्च और विलेय नाइट्रोजनी पदार्थ-जैसे आसानी से जैव अपघटनीय यौगिक होते हैं। इसलिए पोषक ह्यूमस मृदा सूक्ष्मजीवों के लिए एक महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत भी होता है। खनिज मृदा के कुल ह्यूमस का अधिकांश भाग वास्तविक ह्यूमस का उदासीन ह्यूमस होता है। इसे अनुरक्षण ह्यूमस भी कहा जाता है क्योंकि यह पोषक ह्यूमस की अपेक्षा मृदा में अधिक समय तक बना रहता है, इसका रंग लगभग काला होता है।

विभिन्न दशाओं में मृदा के अंदर और बाहर पादप तथा जैव अवशेष अपघटित होते रहते हैं। अपघटन की दर तथा निर्मित अंतिम उत्पाद तापमान, नमी वायु, रसायनों एवं सूक्ष्म जीवों पर निर्भर करते हैं। तापमान जितना अधिक होता है, अपघटन भी उतना अधिक तेजी से होता है। यही कारण है कि उष्णकटिबंधीय उच्च भूमियों में ह्यूमस कम पाया जाता है। जैविक अपघटन के लिए नमी की जरूरत होती है। लेकिन जल की अधिकता से वायु घट जाती है परिणामस्वरूप अपघटन की गति मंद पड़ जाती है। सूक्ष्मजीवों को पोषण हेतु आवश्यक पोषक तत्वों की सुलभता अपघटन की दर को निर्धारित करती है तथा इससे निर्मित ह्यूमस का प्रकार प्रभावित होता है। इस दृष्टि से नाइट्रोजन अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। अनुर्वर मृदाओं की अपेक्षा उर्वर मृदाओं में जैव–पदार्थ अधिक तीव्रता से अपघटित होता है। मृदा जैव पदार्थ के अपघटन का अनुक्रम सामान्यतः इस प्रकार है –

शर्करा, स्टार्च, जलविलेय प्रोटीन---->अपरिष्कृत प्रोटीन---->हेमीसेलुलोज---->सेलुलोज---->तेल, वसा, लिग्निन तथा मोम।

जैवे पदार्थ की अपघटन की दर समय के साथ तथा ह्यूमस की तरह समान रासायनिक संघटन की सी अवस्था को प्राप्त होने के साथ घटती जाती है, जो अपघटन की एक मध्यवर्ती उत्पाद की अवस्था कही जा सकती है। जैव–पदार्थ के अंतिम अपघटन उत्पादों में कार्बन डाइ ऑक्साइड जल, नाइट्रस ऑक्साइड, सल्फेड, मीथेन, अमोनियम तथा हाइड्रोजन सल्फाइड आदि हैं। यह परिवर्तन इस बात पर निर्भर करता है कि अपघटन वायुजीवी है अथवा अवायुजीवी। इन प्रक्रियाओं के लिए सूक्ष्मजीव और उनके एन्जाइम अधिकतर उत्तरदायी होते हैं। वस्तुतः मृदा में जैव पदार्थ का अपघटन एक पाचन प्रक्रिया की तरह होता है। जैव पदार्थ के भलीभांति अपघटन हेतु पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है।

मृदा से पर्याप्त मात्रा में फसलोत्पादन प्राप्त करने तथा मृदा के संरक्षण हेतु जैव पदार्थ के प्रबंध की आवश्यकता है। प्रबंध का प्रकार मृदा की प्रकृति, जलवायु और भावी भूमि पर निर्भर करता है। इन सब का लक्ष्य मृदा में पर्याप्त मात्रा में पोषक एवं स्थायी ह्यूमस को उपलब्ध कराना है। इसके लिए पर्याप्त मात्रा में जैव पदार्थ का उत्पादन तथा जहां तक सम्भव हो, गहराई तक मृदा परिच्छेदिका में ह्यूमस को वितरित करना होता है। इस तरह के प्रबंध में उर्वरकीकरण, चूना डालना, ऐसी फसलों को उगाना जिनसे मृदा के भीतर और मृदा के ऊपर पर्याप्त मात्रा में पादप अवशेष

प्राप्त होते हैं, सम्मिलित हैं। इस संबंध में पास वाले पौधों की रेशेदार जड़ें तथा फलीदार पौधों की गहराई तक जाने वाली जड़ों का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

अधिकतम ह्यूमस निर्माण के लिए अवशेषों के कार्बनमय घटकों को जोड़ने के लिए नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा चाहिए। वास्तव में ह्यूमस उत्पादन में नाइट्रोजनी यौगिक और लिग्निन महत्वपूर्ण है। यदि जैव–पदार्थ का कार्बन नाइट्रोजन अनुपात 30:1 से अधिक होता है तथा मृदा में खनिज नाइट्रोजन की पूर्ति से नाइट्रोजन मिल जाती है। मृदा की ऊपरी परत में जैव पदार्थ की उपस्थिति विशेष रूप से लाभदायक होती है, इसलिए जैव–पदार्थ का मुख्य रूप से यहीं संचय होना चाहिए। मृदा की ऊपरी 5 सेमी. की परत में जैव पदार्थ का मिलाना अधिकांश पादप अवशेषों को मृदा के ऊपर छोड़ने की अपेक्षा अधिक उत्तम है।

स्मरण रहे, जैव पदार्थ के बेहतर प्रबंध हेतु फसल अवशेषों को ऐसी दर से व ऐसे समय अपघटित होने दिया जाए कि सूक्ष्मजीवों के लिए आवश्यक नाइट्रोजन व अन्य पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा मिलती रहे तथा वर्धनशील फसल के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा में कटौती न हो। यह बात सही है कि जैविक खादें आज की अधिक पैदावार देने वाली किस्मों की पोषक तत्वों की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकतीं। उनसे अधिक पैदावार के लिए रासायनिक उर्वरक तो डालने ही पड़ेंगे परंतु दोनों प्रकार की चीजों का उपयोग करके हम भूमि की उपजाऊ शक्ति को लम्बे समय तक कायम रख सकते हैं।

o o o

त्वचा कैंसर के रहस्य का हुआ खुलासा

वैज्ञानिकों ने त्वचा कैंसर के रहस्य को खोजने का दावा किया है। शोधकर्ताओं के अनुसार त्वचा कैंसर में अर्बुद बनने और खत्म होने में प्रतिरक्षा तंत्र की अहम् भूमिका होती है। इस शोध के साथ ही वैज्ञानिकों का मानना है कि इस रोग के इलाज में मदद सकेगी। 'इम्यूनोलॉजी एंड सेल बायोलॉजी' नामक जरनल की रिपोर्ट के अनुसार सिडनी विश्वविद्यालय के नेतृत्व में वैज्ञानिकों के एक अंतरराष्ट्रीय दल ने घातक त्वचा कैंसर में अर्बुद द्वारा उत्पन्न किए जाने वाला तत्व खोज निकाला है। प्रमुख शोधकर्ता, डॉ. स्कॉट बायर्न ने कहा कि त्वचा के कुछ कैंसर समय के साथ कम हो जाते हैं, जबकि कुछ लगातार बढ़ते हुए घातक हो जाते हैं। डॉ. बायर्न के अनुसार शोध में यह निष्कर्ष निकला है कि त्वचा कैंसर में अर्बुद एक तत्व ट्रांसफार्मिंग ग्रोथ फैक्टर (टीजीएफ) बीटा उत्सर्जित करके प्रतिरक्षा तंत्र को कमजोर कर देते हैं जिससे रोग लगातार बढ़ता जाता है। इस शोध से त्वचा कैंसर के कारणों का रहस्य खुला है तथा इसकी मदद से त्वचा कैंसर की रोकथाम में भी सहायता मिल सकेगी।

दीपक कोहली

4954 HRD/10—3 A

3

खनिज एवं खननः इतिहास के पन्नों से

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय*

आदिकाल से आधुनिक काल तक मानव के जीवन में खनिजों का काफी महत्वपूर्ण योगदान रहता आया है। मानव सभ्यता का विकास सदैव किसी न किसी रूप में खनिजों के उपयोग से जुड़ा रहा है। अपनी सभ्यता के विकास के प्रत्येक सोपान पर सहारा प्राप्त करने हेतु मानव आशा भरी निगाहों से खनिजों की ओर देखता आया है।

आदिकाल से आधुनिक काल तक मानव के जीवन में खनिजों का काफी महत्वपूर्ण योगदान रहता आया है। मानव सभ्यता का विकास सदैव किसी न किसी रूप में खनिजों के उपयोग से जुड़ा रहा है। अपनी सभ्यता के विकास के प्रत्येक सोपान पर सहारा प्राप्त करने हेतु मानव आशा भरी निगाहों से खनिजों की ओर देखता आया है।

अनुमान है कि मानव शुरू से ही खनिजों के उपयोगात्मक पहलू से आकर्षित हुआ होगा। आदि मानव आहार तथा आवास की खोज में भटकता हुआ प्रकृति में बिखरे हुए विभिन्न प्रकार के खनिजों से धीरे–धीरे परिचित हुआ होगा। इस प्रकार उसे कुछ खनिजों तथा शैलों की उपयोगिता मालूम पड़ने लगी होगी। इस अनुभव ने उसे उन खनिजों को अपनी आवश्यकता के अनुसार उपयोग में लाने हेतु प्रेरित किया होगा। अनुमान है कि शुरू–शुरू में मानव ने कुछ अधात्विक खनिजों तथा शैलों का उपयोग प्रारंभ किया होगा। इस प्रकार के कुछ खनिज जो उपयोग में लाए गए, उनमें शामिल थे–चकमक पत्थर (फ्लिंट), चर्ट, स्फटिक (क्वार्ज) तथा कुछ अन्य कठोर तथा मुलायम पत्थर, जैसे–क्वार्जाइट, सोपस्टोन तथा चूना पत्थर (लाइमस्टोन)। आदिमानव ने चकमक पत्थर को आपस में रगड़ कर उसने आग जलाना सीख लिया। आग जलाने की तकनीक सीख लेने के बाद उसके जीवन में एक प्रकार की क्रांति आ गई। अब वह अपने आहार को आग में पकाकर अधिक स्वादिष्ट एवं सुपाच्य बना सकता था। आग जलाकर उसने घातक जंगली जानवरों से अपनी सुरक्षा भी प्राप्त की। जाड़े से बचने के लिए भी आग बड़े काम की चीज साबित हुई।

अधात्विक खनिजों तथा पत्थरों से मानव ने अपने दैनिक जीवन में काम आने वाले औजार तथा अस्त्र–शस्त्र भी बनाने शुरू किए। सन् 1753 में एल.एस.बी. लीकी तथा उनकी पत्नी ने शोध के सिलसिले में तंजानिया के ओल्दुवाई नामक एक संकीर्ण घाटी का भ्रमण किया। इस स्थान पर एक गुफा में उन्हें पत्थर से निर्मित आदिम किस्म के कुछ औजार प्राप्त हुए जिनकी आयु लगभग 20 लाख वर्ष आंकी गई। जिस काल में मानव पत्थरों से अपने औजार तथा अस्त्र–शस्त्र बनाता था, उस काल को इतिहास में पाषाण काल (स्टोन एज) कहा जाता है। जिस काल में मानव पत्थरों को बिना

4954 HRD/10—3 B

काटे–छाँटे या बेढंगे काट कर काम में लाया जाता था उस काल को प्राक् पाषाण काल (प्री स्टोन एज) कहा जाता है। तंजानिया के ओल्दुवाई घाटी में लीकी दंपति द्वारा खोजे गए बेडौल औजार प्राक् पाषाण काल के ही हैं। प्राक् पाषाण काल आठ लाख वर्ष पूर्व समाप्त हुआ। उसके बाद आगमन हुआ पाषाण काल का। पाषाण काल को दो भागों में विभक्त किया गया है। पहला है पुरा पाषाण काल (पैलियोलिथिक एज) जब हाथ द्वारा काम में लाए जाने वाले पत्थर के भारी भरकम आरे तथा कुल्हाड़ी बनाई जाती थी। इस काल में निर्मित पत्थर की बेडौल कुल्हाड़ी पश्चिमी पंजाब में पोरवार प्लैटो की सोन घाटी में पाई गई है। पुरा पाषाण काल के बाद आगमन हुआ नव पाषाण काल (नियोलिथिक एज) का जब मानव ने पत्थरों को घिस कर उन्नत किस्म के औजार तथा अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण शुरू किया। इस काल के दौरान निर्मित पत्थर के औजार कर्नाटक के बेल्लारी जिले में पाए गए हैं।

कुछ समय बाद मानव ने मिट्टी का उपयोग शुरू किया। मिट्टी के साथ मानव को यह सुविधा थी कि वह इसे आसानी से प्राप्त कर सकता था तथा सरलतापूर्वक इसे वांछित आकार एवं आकृति प्रदान कर सकता था। अब प्रागैतिहासिक मानव मिट्टी से दीवार बनाकर अपने आवास का निर्माण करने लगा। अब उसे पहाड़ी गुफाओं में रहने की आवश्यकता नहीं थी। कुछ समय बाद उसने मिट्टी से ईंट, खपड़ों तथा बर्तनों का निर्माण शुरू किया। मिट्टी से निर्मित मूर्तियाँ संसार के अनेक देशों मे पुरातात्विक उत्खननों से पाई गई हैं। चेक गणराज्य के मोराविया नामक स्थान पर की गई खुदाई से 20 से 30 हजार वर्ष पूर्व निर्मित मिट्टी की मूतियाँ पाई गईं। मिस्र तथा बेवीलोन में प्राचीन काल के दौरान भवन निर्माण हेतु मिट्टी के खपड़ों तथा ईंटों का उपयोग व्यापक पैमाने पर हुआ था। भारत में भी हड़प्पा काल के अधिकांश मकान मिट्टी की ईंटों से बनाए गए थे जिनका निर्माण लगभग 2200 वर्ष ईसापूर्व में हुआ था।

जब मानव सभ्यता थोड़ी विकसित हुई तो इमारती पत्थरों का उपयोग भी शुरू हुआ। मिस्र के पिरामिडों में इमारती पत्थरों का उपयोग व्यापक पैमाने पर किया गया। दिल्ली का पुराना किला महाभारत काल के पांडवों द्वारा निर्मित बताया जाता है जिसमें इमारती पत्थरों का उपयोग हुआ था। बिहार में रोहतास का किला भी लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व बनाया गया था जिसमें इमारती पत्थरों का उपयोग किया गया था। कहा जाता है कि इस किले का निर्माण पौराणिक काल के सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व द्वारा कराया गया था। रोहिताश्व के नाम पर ही इस स्थान का नाम रोहितास पड़ा। मगध की प्राचीन राजधानी राजगीर के भवनों में भी इमारती पत्थरों का उपयोग किया गया था।

उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि पुरा पाषाण कालीन मानव ने 13 प्रकार के खनिजों का उपयोग किया था। इन खनिजों में शामिल थे– स्फटिक, रॉक क्रिस्टल, कैल्सिडोनी, सर्पेन्टीन, औबसीडियन, पाइराइट, जैस्पर, ऐम्बर, स्टीअटाइट, जैड्आइट, कैल्साइट, एमिथिस्ट तथा फ्लोराइट। गेरू तथा अन्य खनिज वर्णकों का उपयोग भी धड़ल्ले से किया गया। नवपाषाण कालीन मानव ने सोने तथा ताम्बे का उपयोग भी शुरू कर दिया। इनके अलावा कुछ अधात्विक खनिज जैसे नेफ्राइट, सिलिमेनाइट तथा फिरोजा (टर्क्वायज) का भी उपयोग किया जाने लगा।

प्रागैतिहासिक मानव रत्नों की चमक–दमक से भी काफी आकर्षित एवं प्रभावित हुआ। अतः उस काल में रत्नों की खोज एवं खनन को भी काफी महत्व दिया गया। मिस्र में विभिन्न सम्राटों के शासन काल के दौरान भूविद्वानवेत्ताओं को फिरोजा की खोज करने हेतु सिनाई प्रायद्वीप तथा सूडान भेजा गया। ऐसे ही भूविज्ञान–वेत्ताओं में एक प्रमुख नाम है कैप्टन हैरोसिस का। उसने दो हजार वर्ष ईसा पूर्व सिनाई प्रायद्वीप में गहन सर्वेक्षण के बाद फिरोजा की खोज की तथा उसका उत्खनन कराया। मिस्र में ही लाल सागर के किनारे दो हजार वर्ष ईसापूर्व पन्ना हेतु उत्खनन किए जाने के साक्ष्य मिले हैं। इन रत्नों के अलावा भी मिस्र में कई प्रकार के अन्य रत्नों की खोज एवं खनन का कार्य किया गया। इन रत्नों में शामिल थे अगेट

कार्नेलियन, कैल्सिडोनी तथा जेड इत्यादि। पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि प्राचीन काल में भारत, मिस्र, बेबीलोन तथा अन्य देशों में रत्नों का व्यवहार, उनकी खोज एवं खनन एक उत्कृष्ट कला के रूप में विकसित हो चुका था। लगभग 3400 वर्ष ईसा पूर्व मिस्र में रत्नों का मूल्यांकन उनके रंग पर होता था। कुछ देशों में जौहरी आकर्षक रंगों के रत्न ढूंढ़ने, उन पर पॉलिश करने तथा आभूषण में उनका उपयोग करने में दक्षता प्राप्त करने का प्रयास करते थे। इसके लिए वे आसमानी रंग का लाजवर्द (लैपिस लैजुली), लाल रंग का अकीक (कार्नेलियन), बैंगनी रंग का जमुनिया (एमिथिस्ट), हरे रंग का मैलाकाइट, पीले रंग का सूर्यकांतमणि (जैस्पर) तथा नीले रंग का फिरोजा उपयोग में लाते थे। इन रत्नों को तराश कर उन पर पोलिश किया जाता था। उसके बाद उन्हें मनकों की आकृति देकर जाप की माला या हार बनाने हेतु उपयोग में लाया जाता था।

धीरे–धीरे प्रागैतिहासिक मानवों को विभिन्न प्रकार की धातुओं से परिचय हुआ। शुरू में उन धातुओं से परिचय हुआ जो प्राकृतिक अवस्था (नेटिव स्टेट) में नदियों में बालू के कणों के साथ पाई जाती थी। इन धातुओं में सर्वप्रमुख था सोना जो सबसे पहले खोजा गया। उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि मानव का सोने से परिचय आज से 20 हजार वर्ष पूर्व हुआ। संसार में कुछ स्थानों पर नव पाषाण कालीन कब्रों की खुदाई से अशुद्ध सोने के टुकड़े तथा सोने के पत्तर प्राप्त हुए हैं। ये कब्रें लगभग 20 हजार वर्ष पुरानी बताई जाती हैं। सोने की खोज के कुछ समय बाद तांबे की खोज हुई। मानव को तांबे की जानकारी लगभग 10 हजार वर्ष पूर्व प्राप्त हुई। धात्विक अवस्था (नेटिव स्टेट) में प्राप्त होने के कारण नव पाषाण कालीन मानव ने पत्थरों के स्थान पर तांबे का उपयोग अपने औजारों तथा अस्त्र–शस्त्रों के निर्माण हेतु करना शुरु किया। इतिहासविदों के मतानुसार प्रागैतिहासिक काल में तांबे के खनन एवं धातु कर्म का सर्वाधिक विकास मिस्र में हुआ। मिस्र में किए गए पुरातात्विक उत्खननों से जो संकेत मिले हैं उनसे पता चलता है कि लगभग 5,000 वर्ष ईसा पूर्व वहाँ के लोग तांबे से औजार एवं अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण करते थे। यूरोप में चार हजार वर्ष ईसा पूर्व तांबे का उपयोग होने लगा था। भारत में भी लगभग चार हजार वर्ष ईसा पूर्व तांबे का उपयोग बर्तन, औजार तथा अस्त्र–शस्त्रों के निर्माण हेतु किया जाने लगा।

मानव के लिए जैसे–जैसे धातुओं, रत्नों एवं अन्य खनिजों की उपयोगिता बढ़ती गई, वैसे–वैसे उनकी खोज एवं प्राप्ति के बारे में उत्कंठा भी बढ़ती गई। उनके प्राप्ति–स्थान के बारे में लोग समझने का प्रयास करने लगे। खनिजों के प्राप्ति–स्थान के संबंध में स्थूल सिद्धांत गढ़े जाने लगे, खनिजों की खोज के लिए साहसिक यात्राएं संगठित की जाने लगीं तथा खनिजों के नए–नए उपयोग लोगों की जानकारी में आने लगे। उदाहरणार्थ शुरू–शुरू में मानव जहाँ पत्थरों का उपयोग सिर्फ आग पैदा करने तथा हथियार बनाने के लिए करता था, वहीं अब उनका उपयोग बर्तन बनाने तथा औषधि निर्माण के लिए करने लगा। इस प्रकार खनिजों की बढ़ती उपयोगिता को ध्यान में रख कर मानव ने उनकी खोज की विधि की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास शुरू किया। प्राचीन काल के कुछ विद्वानों ने खनिजों की प्राप्ति के संबंध में अर्जित ज्ञान को लिपिबद्ध किया जो प्रारंभिक भूविज्ञान का रूप था।

भूविज्ञान संबंधी प्रारंभिक ज्ञान को लिपिबद्ध करने वालों में शामिल थे कुछ भारतीय, यूनानी तथा अन्य विद्वान। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व कौटिल्य ने अपने द्वारा लिखित 'अर्थ शास्त्र' में खनिजों की प्राप्ति तथा खनन के संबंध में काफी जानकारी प्रदान की है। भारत के प्राचीन विद्वान महर्षि कणाद ने अपने द्वारा लिखित 'वैशेषिक दर्शन' में अनेक धातुओं के गुणों की चर्चा की है। प्रसिद्ध भारतीय विद्वान वराहमिहिर ने ईसा बाद छठी शताब्दी में 'बृहत्संहिता' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में विभिन्न प्रकार के रत्नों को पहचानने के तरीके दिए गए हैं। साथ ही इसी ग्रंथ में भूमिगत जल की खोज की विधियाँ बताई गई हैं। यूनानी दार्शनिक हीरोडोट्स ने भी पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व अपने द्वारा लिखित ग्रंथ में बताया था कि यूनान के

क्रिसाइट जिले में स्फटिक शिराओं (क्वार्ज वेन्स) में सोने की प्राप्ति होती है। यूनान का ही एक अन्य विद्वान था थियोफ्रैस्टस जो अरस्तू का शिष्य था। थियोफ्रैस्टस ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था 'बुक ऑफ स्टोन्स'। इस पुस्तक में उसने खनिजों को तीन वर्गों में विभाजित किया था जिनमें शामिल थे– (i) धातु वर्ग, (ii) प्रस्तर वर्ग तथा (iii) मिट्टी वर्ग। स्पेन के विद्वान प्लीनी ने ईसा बाद पहली शताब्दी में अपने द्वारा लिखित पुस्तक में दक्षिणी स्पेन में स्थित 'बैबुलो' नामक चांदी की खान की चर्चा की थी जो हानिवाल द्वारा नियंत्रित थी। यूनानी विद्वान जेनोफेन द्वारा 365 वर्ष ईसा पूर्व एक पुस्तक लिखी गई जिसमें बताया गया कि उस काल में अट्टिका (दक्षिण पूर्व यूनान) में चांदी तथा सीसा (लेड) अयस्क का उत्पादन एक प्रमुख उद्योग के रूप में पनप चुका था। अरब विद्वान अवियेना ने ईसा बाद ग्यारहवीं शताब्दी में एक पुस्तक लिखी जिसमें खनिजों को चार वर्गों में विभाजित किया गया जिनमें शामिल थे (i) प्रस्तर वर्ग, (ii) गंधन वर्ग, (iii) धातु वर्ग तथा (iv) लवण वर्ग। जर्मन विद्वान जौर्जियस एग्रिकोला ने ईसा बाद 16वीं शताब्दी में अपने द्वारा लिखित पुस्तक में खनिजों को 'समसर्वत्र खनिज' तथा शैलों (रॉक) को 'असमसर्वत्र खनिज' नाम दिया। समसर्वत्र खनिजों को उसने पांच वर्गों में विभाजित किया। ये पांच वर्ग थे–(i) मिट्टी वर्ग, (ii) लवण वर्ग (iii) रत्न वर्ग, (iv) धातु वर्ग तथा (v) अन्य खनिज वर्ग।

भारत में खनिजों की खोज एवं खनन का कार्य प्रागैतिहासिक काल से ही होता चला आ रहा है। यहां वैदिक काल के पूर्व तथा वैदिक काल के दौरान विभिन्न प्रकार के खनिज व्यापक स्तर पर उपयोग में लाए जाते थे। रामायण तथा महाभारत काल में सोने–चांदी तथा रत्नों को उपयोग में लाए जाने की चर्चा विभिन्न पौराणिक ग्रंथों में की गई है। हड़प्पा कालीन टीलों की खुदाई से ऐसे आभूषण प्राप्त हुए हैं जिनमें सुलेमानी पत्थर (अगेस्ट), अकीक (कार्नेलियन), जमुनिया (एमिथिस्ट), बिल्लौर (रॉक क्रिस्टल), लाजवर्द (लैसिस–लैजुली), सूर्यकांत मणि (जैस्पर) तथा ब्लडस्टोन इत्यादि रत्नों का उपयोग किया गया था।

चौथी शताब्दी ईसा पूर्व कौटिल्य द्वारा लिखित 'अर्थशास्त्र' में खानों से प्राप्त धन की चर्चा की गई है। इस ग्रंथ में बताया गया है कि उस काल के दौरान खनिजों तथा खनन उद्योग को नियंत्रित करने के लिए तत्कालीन सरकार द्वारा सात विभाग बनाए गए थे जिनके अलग–अलग विभागाध्यक्ष हुआ करते थे। इन विभागाध्यक्षों को 'खान्याध्यक्ष' कहा जाता था। कौटिल्य द्वारा लिखित 'अर्थशास्त्र' में उस काल के दौरान मौजूद खानों के स्थान, उनका विकास, निरीक्षण, नियंत्रण तथा प्रशासन जैसे विषयों का विस्तृत विवरण दिया गया है। उस काल में खान तथा खनन उद्योग से जुड़े पदाधिकारियों के कार्यों को विभाजित कर दिया गया था। उदाहरणार्थ कोई पदाधिकारी खनिजों की खोज करता था तो कोई अन्य पदाधिकारी खनिजों का उत्खनन कराता था।

मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में यूनानी पर्यटन मेगास्थनिज भारत आया था। उसने अपने यात्रा विवरणों में भारत के खनिज–उद्योग की काफी चर्चा की थी। उसने लिखा था कि भारत में कई खनिज पाए जाते हैं जिनमें शामिल हैं सोना, चांदी, तांबा, लोहा, तथा रांगा (टिन) इत्यादि। ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में प्रसिद्ध यूनानी विद्वान होमर ने लिखा था कि यूनानी लोग भारतीय उप महाद्वीप से अन्य खनिजों के अलावा कैसीटेराइट (टिन अयस्क) का भी आयात करते हैं। उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व गुजरात के भड़ोच तथा दक्षिण भारत के दक्षिणापद नामक स्थान से विदेशों को कई प्रकार के खनिजों का निर्यात किया जाता था जिनमें शामिल थे अकीक, सोना, शोरा, तांबा, रांगा, सीसा (लेड), मूंगा तथा पुखराज इत्यादि।

अनुमान है कि भारत में लोहे का उपयोग वैदिक काल के पूर्व ही होने लगा था। ऋग्वेद में बताया गया है कि इंद्र के पास लोहे का गदा था जिसमें एक हजार नुकीले बिंदु थे। अनुमान है कि ऋग्वेद की रचना आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व की गई थी। बोध गया में एक स्थान पर खुदाई के दौरान लोहे के कुछ क्लैम्प

पाए गए जो ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में निर्मित बताए जाते हैं। विश्वप्रसिद्ध 'डमास्कस ब्लेड' का निर्माण एक प्रकार के भारतीय इस्पात से किया जाता था जिसे 'वूट्स स्टील' भी कहा जाता है। प्रसिद्ध अरब विद्वान अलबरूनी ने ग्यारहवीं शताब्दी में लिखा था कि भारत के लोग अयस्क से धातु प्राप्त करने में बहुत अधिक दक्ष थे।

मध्य कालीन भारत में कई प्रकार के धातु उद्योग पनप चुके थे। इनके देश के अंदर लौह एवं अलौह धातुओं की आपूर्ति संतोषजनक ढंग से होती रही। बिहार, राजस्थान, तथा दक्षिण भारत के अनेक क्षेत्रों में लोहे, तांबे, जस्ते, सीसे एवं सोने के कचरे भारी मात्रा में बिखरे पाए जाते हैं। इनसे पता चलता है कि प्राचीन भारत में उपर्युक्त धातुओं से संबंधित उद्योग काफी उन्नत अवस्था में पहुँच चुके थे। कहीं–कहीं सीसा (लेड) एवं जस्ता पिघलाने वाले घड़िया (क्रुसिबुल) के टुकड़े पाए गए हैं।

बहुत हाल तक भारत में खनिजों की खोज एवं खनन का कार्य यूरोपीय पूंजी तथा तकनीकी जानकारी के बल पर होता था। द्वितीय विश्वयुद्ध तक खनिजों का खनन इसी प्रकार अनियमित ढंग से चलता रहा। कोयला, तेल तथा लौह अयस्क को छोड़ कर (जिनकी खपत देश में ही हो जाती थी) अन्य सभी खनिजों का उत्पादन सिर्फ निर्यात के लिए किया जाता था। निर्यात किए जाने वाले खनिजों में शामिल थे– मैंगनीज अयस्क, अभ्रक, इल्मेराइट, क्रोमोइट इत्यादि।

सन् 1851 ई. में भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जी. एस.आई.) की स्थापना की गई। आज यह संसार की तीसरी सबसे पुरानी सर्वेक्षण संस्था है। शुरू में इस संस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य था कोयले तथा लौह अयस्क की खोज करना। धीरे–धीरे इसका विकास देश की सबसे बड़ी वैज्ञानिक संस्था के रूप में हो गया। आज इसमें कार्यरत कर्मचारियों एवं पदाधिकारियों की संख्या दस हजार से अधिक है, जबकि वर्ष 1947 में इस संस्था में सिर्फ चार सौ व्यक्ति कार्यरत थे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के कार्य–कलाप बहुत विस्तृत हो गए तथा खनिज संसाधनों के नए–नए स्रोतों का पता लगाया जाने लगा। आजादी के पूर्व अलौह धातुओं (जैसे तांबा, जस्ता, सीसा आदि) की खपत का अधिकांश भाग विदेशों से आयात किया जाता था। इन अलौह धातुओं की खपत में वृद्धि को ध्यान में रखते हुए देश के मौजूदा भंडारों के चित्रण (मैपिंग) तथा नए स्रोतों के विस्तृत अन्वेषण की योजना बनाई गई। इसके फलस्वरूप इन धातुओं के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। अभी तक के अध्ययन के फलस्वरूप ताम्र अयस्क का भंडार लगभग 133.8 करोड़ टन तथा जस्ता एवं सीसा अयस्क का भंडार लगभग 10 करोड़ टन खोजा गया है।

एलुमिनियम उद्योगों की वृद्धि तथा निर्यात को ध्यान में रखते हुए जी.एस.आई. ने गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश इत्यादि के समुद्रतटीय क्षेत्रों में तथा देश के भीतरी भागों में उपलब्ध बॉक्साइट भंडारों की व्यवस्थित खोज का कार्य आरंभ किया। अभी तक के सर्वेक्षण से पता चलता है कि भारत में उच्च स्तर के बॉक्साइट का भंडार 20 करोड़ टन तथा निम्न स्तर के बॉक्साइट का भंडार लगभग 7 करोड़ टन है।

भारत में उपलब्ध लौह अयस्क का भंडार लगभग 22 अरब टन है। यह संसार में उपलब्ध उच्च श्रेणी के अयस्कों में माना जाता है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के प्रयासों के फलस्वरूप भारत में खोजे गए लौह अयस्कों के भंडार में 180 करोड़ टन की वृद्धि हुई है।

मैंगनीज निर्यात के क्षेत्र में भारत विश्व में एक प्रमुख देश माना जाता है। स्वतंत्रता के बाद मैंगनीज की खोज भी जी.एस.आई. द्वारा बहुत तेजी से की गई। अभी तक खोजे गए मैंगनीज अयस्कों का भंडार लगभग 20 करोड़ टन है। जी.एस.आई. अभी निम्न फॉस्फोरस मैंगनीज अयस्कों की खोज का कार्य मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र में बहुत तेजी से कर रहा है। क्रोमाइट की खोज एवं उत्पादन का कार्य भी स्वाधीनता प्राप्ति के बाद बहुत तेजी से बढ़ा है। हाल में कई क्रोमाइट क्षेत्रों का पता चला है। अभी तक खोजे गए क्रोमाइट का कुल अनुमानित भंडार लगभग 1.5 करोड़ टन है।

खनिज कोयले का उत्पादन भारत में सर्वप्रथम सन् 1775 ई. में बंगाल के रानीगंज में हुआ। यह कोयला निम्न स्तर का था। प्रारंभ के वर्षों में कोयला खनन के दौरान भंडार के संरक्षण पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। इसका नतीजा यह हुआ था जितने कोयले का उत्पादन हुआ उसका लगभग 50 प्रतिशत नष्ट हो गया क्योंकि कोयला खानों में छत के गिरने से रोकने के लिए मोटे–मोटे तथा बड़े–बड़े स्तंभों के रूप में कोयले को ही छोड़ दिया जाता था। इस तरह काफी कोयले की क्षति होती थी। कोयला खनन के क्षेत्र में भारत की एक और समस्या रही है। वह समस्या है लौह कारखानों में उपयोग लायक कोकिंग कोल की आपूर्ति की। इस तरह का कोयला हवा की अनुपस्थिति में गर्म करने पर एक कड़ा अवशेष छोड़ता है जिसे 'कोक' कहा जाता है। आधुनिक धमन भट्ठियों के लिए कोक अत्यावश्यक है। भारत में कोकिंग कोयले की उपस्थिति के अनुमान अनेक भूवैज्ञानिकों द्वारा लगाए गए हैं। सन् 1937 में कोल माइनिंग कमिटी द्वारा लगाए गए अनुमान के अनुसार भारत में कोकिंग कोल का कुल भंडार लगभग 142.5 करोड़ टन है। हाल में किए गए सर्वेक्षणों से पता चला है कि भारत में कुल 176 अरब टन कोयले तथा 55 करोड़ टन लिग्नाइट का भंडार है।

भारत में खनिज तेल की खोज सर्वप्रथम असम के डिगबोई नामक स्थान पर हुई जहाँ तेल के लिए खनन का कार्य सन् 1890 ई. में असम रेलवे एंड ट्रेडिंग कम्पनी द्वारा शुरु किया गया। सन् 1899 ई. में इसकी एक इकाई असम ऑयल कम्पनी के नाम से विकसित हुई। सन् 1950 से शुरु होने वाले दशक में असम के कुछ और स्थानों पर तेल मिला जिनमें शामिल थे नहरकोटिया, हुग्रीजन तथा मोरान। सन् 1958 से 1960 के बीच गुजरात के खम्भात तथा अंकलेश्वर में तेल एवं गैस का विशाल भंडार मिला। कुछ समय के बाद समुद्री क्षेत्र में भी कुछ स्थानों पर तेल एवं गैस का भंडार खोजा गया तथा वहाँ उसका उत्पादन शुरु किया गया। अभी भारत में खनिज तेल का वार्षिक उत्पादन लगभग तीन करोड़ टन है।

जहां तक नाभिकीय खनिजों का प्रश्न है, भारत में यूरेनियम खनिज की उपस्थिति की रिपोर्ट पहली बार सन् 1860 में एमिल स्टोहर नामक एक जर्मन भूवैज्ञानिक द्वारा प्रस्तुत की गई। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि सिंहभूमि जिले (झारखंड) के जोप्सो हिल में कॉपर यूरेनीनाइट मौजूद हैं जिसका पुराना नाम टार्बरनाइट था। इसे भारतीय भूवैज्ञानिक साहित्य में यूरेनियम के नाम से जाना जाता है। यूरेनियम का एक खनिज पिच ब्लेंड पहली बार थॉमस हॉलैंड द्वारा सन् 1901 में बिहार के गया जिले में सिंगार गांव से थोड़ी दूर एक अभ्रक खान में पाया गया। आर.सी. बर्टन ने सन् 1912 में गया जिले के अबरश्वी पहाड़ में पिचरलेंड की खोज की। सन् 1948 में परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना हुई। इस आयोग के परमाणु खनिज विभाग ने नाभिकीय खनिजों के कई क्षेत्रों की खोज की जिनमें प्रमुख हैं झारखंड के जादुगुड़ा नामक स्थान पर यूरेनियम खनिज तथा तमिलनाडु एवं केरल के समुद्री किनारों पर थोरियम खनिज मोनाजाइट। अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी की रिपोर्ट के अनुसार भारत में यूरेनियम ऑक्साइड का भंडार लगभग 72,500 टन है।

4

बंजर भूमि : सुधार एवं प्रबंधन

डॉ. वीरेन्द्र कुमार*

हमारे देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3,287.3 लाख हैक्टेयर है जिसमें से 1,418.9 लाख हैक्टेयर पर खेती की जाती है। जबकि राष्ट्रीय दूर–संवेदी एजेन्सी (एन.आर.एस.ए.) के अनुसार देश में कुल 552.7 लाख हैक्टेयर बंजर भूमि है। कुल कृषि क्षेत्र का लगभग 580 लाख हैक्टेयर सिंचित है और शेष 840 लाख हैक्टेयर वर्षाधारित है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण भूमि की उपलब्धता दिनों दिन घटती जा रही है। वर्ष 1951 में प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता 0.90 हैक्टेयर से घटकर वर्ष 2001 में 0.32 हैक्टेयर रह गई है जिसके वर्ष 2025 में घटकर 0.23 हैक्टेयर होने का अनुमान लगाया गया है। देश की बढ़ती जनसंख्या की जरूरतों को पूरा करने के लिए बंजर भूमि को सुधार कर खेती योग्य बनाने की नितांत आवश्यकता है। इन समस्याग्रस्त भूखंडों को सुधार कर फसलोत्पादन के अंतर्गत लाने से जहाँ एक ओर अतिरिक्त खाद्य, खाद्य पदार्थों, रेशा, चारा, ईंधन और ऊर्जा की माँग पूरी करने में मदद मिलेगी, वहीं दूसरी तरफ बंजर भूमि सुधार और प्रबंधन और भूमि व जल जैसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से गाँवों में बेहतर पर्यावरण प्रदान किया जा सकता है। बंजर भूमि देश के सभी प्रांतों में फैली हुई है। यह भूमि विभिन्न विकारों से ग्रस्त होती है। इस प्रकार की भूमि में फसल उत्पादन नहीं के बराबर होता है। जल निकास का उचित प्रबंध न होने के कारण वर्षा ऋतु में इन भूखंडों में पानी भर जाता है जिसके परिणामस्वरूप अवांछित खरपतवारों, घासों व हानिकारक झाड़ियों के फैलाव को बढ़ावा मिलता है। इस तरह की भूमि छोटे किसानों के पास होती हैं जो अनुसूचित जातियों, जनजातियों या आर्थिक रूप से पिछड़े व उपेक्षित वर्गों से संबद्ध होते हैं। बंजर भूमि सुधार कार्यक्रम से गरीबी उन्मूलन के साथ–साथ समाज में समानता की भावना भी पैदा होती है। इसके अलावा बंजर भूमि की उत्पादकता बढ़ाकर रोजगार सृजन की संभावना भी बढ़ाई जा सकती है।

बंजर भूमि से अभिप्राय

विकास की आवश्यकताओं एवं जनसंख्या दबाव के कारण भूमि का गैर कृषि कार्यों में उपयोग लगातार बढ़ता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप कृषि योग्य भूमि सिकुड़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में सघन कृषि अपनाना अतिआवश्यक हो गया है। सघन खेती में दोषपूर्ण सिंचाई प्रणाली, रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग तथा कीटनाशियों का अंधाधुंध प्रयोग हो रहा है। इसके अलावा भारतीय कृषि के समक्ष अनेक समस्याएं हैं जिनमें से प्रमुख हैं– बिगड़ता मृदा स्वास्थ्य, धीमी विकास दर, किसानों द्वारा आत्महत्या, विशेष आर्थिक क्षेत्र, ऋणग्रस्तता और विश्व व्यापार संगठन का दोहरा रवैया इत्यादि। आज हमारे सामने सीमित भूमि में विशाल जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए अतिरिक्त खाद्यान्न जुटाना एक गंभीर चुनौती है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पिछले कई वर्षों से सघन कृषि प्रणाली के कारण भूमि की उत्पादकता घट रही है या स्थिर है। इस तरह जहाँ आधुनिक खेती ने खाद्यान्न समस्या को सुलझाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वहीं उसने मृदा को बंजर (निम्नीकृत) भी किया है। बंजर भूमि से अभिप्राय "निम्नीकृत (डिग्रेडेड) भूमि से है

जो उचित प्रयास से कृषि योग्य भूमि के अंतर्गत लाई जा सकती है। यह भूमि वर्तमान में कम उपयोगी होती है और उचित पानी और मृदा प्रबंधन की कमी या प्राकृतिक कारणों से बिगड़ती जा रही होती है। बंजर भूमि का बनना एक राष्ट्रव्यापी समस्या है। यह समस्या दिनों दिन गंभीर होती जा रही है। यह एक ऐसी समस्या है जिससे किसानों, उद्यमी, आम जनता एवं सरकार सभी चिंतित हैं परंतु दुर्भाग्यवश इस समस्या का कोई स्थाई समाधान उपलब्ध नहीं है। इसका सामाजिक एवं आर्थिक रूप से विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। इसलिए बंजर भूमि के उचित उपयोग और प्रबंध हेतु उनकी पहचान और फैलाव का आकलन कर सुधार करना आवश्यक हो जाता है। ताकि वर्तमान मानवीय आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके तथा भावी पीढ़ियों का भी ख्याल रखा जा सके।

बंजर भूमि निर्माण करने वाले कारक

भूमि हमारी जीवनदायिनी है परंतु दुर्भाग्यवश यह निम्नीकृत व प्रदूषित होती जा रही है। इसके लिए जिम्मेदार कारकों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:

1. जंगलों की कटाई (डिफॉरेस्टेशन)

वनों की कटाई का सीधा प्रभाव मृदा अपरदन पर पड़ता है। वर्षा जल के अपधावन को नियंत्रित करने में वृक्ष सहायक होते हैं। वनों की कटाई से अपधावन की गति बढ़ जाती है। पेड़ वर्षा के प्रहार को कम करने, मृदा अपरदन रोकने तथा मृदा नमी संरक्षण में मदद करते हैं। वनों के ह्रास से पारिस्थितिक संतुलन प्रभावित होता है, जिसका प्रभाव मौसम पर भी पड़ता है। वनों से प्राप्त जैव अवशिष्ट पदार्थों के अपघटन से मृदा कण संगठित होते हैं। दूसरी तरफ वनों की कटाई से जीवांश पदार्थों के अभाव में मृदा अपरदन तीव्र गति से होता है। इसके अलावा वनरहित क्षेत्रों में ताप वृद्धि से मृदा का क्षरण और विघटन होता है। ढीली मृदाओं को हवा आसानी से उड़ा ले जाती है।

2. मृदा अपरदन

हमारे देश में मृदा अपरदन की समस्या अत्यंत गंभीर है। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 150 लाख हैक्टेयर भाग जल व वायु अपरदन से प्रभावित है जिसमें से 69 लाख हैक्टेयर क्षेत्र भूमि अपरदन के कारण अत्यधिक गंभीर रूप से निम्नीकृत हो चुका है। जल व वायु के अपरदन के कारण एक बड़ा क्षेत्र क्रांतिक अवस्था तक बिगड़ चुका है। जल अपरदन के कारण मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश में यमुना, चम्बल और माही नदियों के आस–पास का बड़ा भू–भाग बीहड़ में बदल चुका है। इस क्षेत्र में जल अपरदन के कारण काफी गहरी (16 से 30 मी.) व 4–6 मी. चौड़ी अवनालिकाओं का जल-सा बिछ गया है जो सामान्य जुताई व कृषि यंत्रों से मिटाई नहीं जा सकती है। मृदा की एक से.मी. मोटी परत बनने में जहाँ सैकड़ों साल लग जाते हैं, वहीं हवा का एक तेज झोंका या भारी वर्षा बड़ी आसानी से इसे अपने स्थान से हटा देती है। इस प्रकार उर्वर भूमि बंजर में बदल जाती है। हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 6 अरब टन मिट्टी का क्षरण हो जाता है। इससे न केवल कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल घटता जा रहा है, बल्कि कृषि भूमि की उत्पादकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

3. जलाक्रांति / जल–भराव

देश की कुल कृषि योग्य भूमि का 83 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल जलाक्रांति / जल–भराव से ग्रसित है, जिसमें फसल उत्पादन लाभदायक अथवा संभव नहीं हो पाता है। जलाक्रांत मृदाओं में मुख्य रूप से धान उगाया जाता है। इस प्रकार की समस्या पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा तथा उत्तर–पूर्वी राज्यों में पाई जाती है। असमतल भू–क्षेत्र वर्षा जल से काफी समय तक जलमग्न रहकर जलाक्रांत बंजर भूमियों का निर्माण करता है। वर्षा ऋतु में इन भूमियों में बहुत अधिक जल भर जाता है तथा ये अत्यधिक चिपचिपी हो जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु में ये अधिक कठोर और चौड़ी दरारों युक्त हो जाती हैं। अतः इनमें दोनों ऋतुओं में कृषि–क्रियाएं करना बड़ा कठिन होता है। इन भूमियों की अभिक्रिया अम्लीय होती है तथा pH मान 6.0 के आस–पास होता है। इनमें प्रमुख रूप से घास व खरपतवार उगे रहते हैं। उत्तर–भारत के नहरी क्षेत्र इस समस्या से अधिक

4954 HRD/10—4 A

प्रभावित हैं क्योंकि इस प्रकार की जलाक्रांति नहरों के दोनों किनारों से जल रिसाव के कारण होती है। अत्यधिक पानी से सिंचाई व बांधों से पानी का रिसाव भी जलमग्नता का प्रमुख कारण है।

4. झूम खेती

एक क्षेत्र या स्थान पर सघन खेती करके जब मृदा की उर्वरता समाप्त हो जाती है तो दूसरे क्षेत्रों में फसल लेना झूम या अंतरित खेती कहलाती है। इसका महत्वपूर्ण प्रभाव मृदा अपरदन पर पड़ता है। इस प्रकार की खेती प्रमुख रूप से पूर्वी राज्यों, मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा हिमाचल प्रदेश में की जाती है। मध्य प्रदेश में इसे पोदू, असम में झूम, शिलांग में तोग्या तथा हिमाचल प्रदेश में खील कहा जाता है। इस पद्धति में नए कृषि क्षेत्रों प्राप्त करने के लिए वनों को काटकर जला दिया जाता है तथा उस पर 4–5 वर्षों तक खेती की जाती है। इसके बाद मृदा उर्वरता कम हो जाने पर इसे 10–12 वर्षों के लिए परती छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार मृदा अपरदन की संभावना बढ़ जाती है जो बंजर भूमि निर्माण को बढ़ावा देता है।

5. खनन / औद्योगिक अपशिष्ट

किसी स्थान पर भू–तल खनन का प्रत्यक्ष प्रभाव वहाँ की वनस्पति तथा भूमि की उत्पादकता पर पड़ता

सारणी 1 : भारत की बंजर भूमियाँ (बंजर भूमि, एटलस–2005, एम.ओ.आर.डी.)
(क्षेत्र वर्ग कि.मी. में)

क्रमांक	बंजर भूमियों का वर्गीकरण	सम्पूर्ण भारत	प्रतिशत
1.	अवनालिका / बीहड़ – उथले	10,283.06	0.32
2.	अवनालिका / बीहड़ – मध्यम	4,685.43	0.15
3.	अवनालिका / बीहड़ – गहरे	4,070.85	0.13
4.	वेस्टलैंड स्कर्ब के साथ	1,50,566.60	4.76
5.	वेस्टलैंड बिना स्कर्ब	37,382.89	1.18
6.	जलभराव – स्थाई	5,341.15	0.17
7.	जलभराव – मौसमी	4,403.82	0.14
8.	लवणीय / क्षारीय – तीव्र	2,569.69	0.08
9.	लवणीय / क्षारीय – मध्यम	5,349.64	0.17
10.	लवणीय / क्षारीय – हल्की	4,104.72	0.13
11.	झूम खेती – परती	12,218.99	0.39
12.	झूम खेती – चालू	6,546.87	0.21
13.	कम उपयोगी डिग्रेडेड वन	1,08,417.76	3.42
14.	वनों के अंतर्गत कृषि भूमि	18,134.05	0.57
15.	डिग्रेडेड चरागाह	19,344.30	0.61
16.	रोपण फसलों के अंतर्गत डिग्रेडेड भूमि	2,138.24	0.07
17.	बालू – मैदानी बाढ़	1,945.55	0.06

4954 HRD/10—4 B

क्रमांक	बंजर भूमियों का वर्गीकरण	सम्पूर्ण भारत	प्रतिशत
18.	बालू – पत्तियां (Leaves)	32.24	0.00
19.	बालू – तटीय रेत	943.14	0.03
20.	बालू – अर्ध स्थिर से स्थिर	2,672.88	0.08
21.	बालू – अर्ध स्थिर से मध्यम	16,380.70	0.52
22.	बालू – अर्ध स्थिर से निम्न स्थिर	10,262.95	0.32
23.	बालू – सघन	1,746.74	0.06
24.	खनन वेस्ट लैंड	1,421.72	0.04
25.	औद्योगिक वेस्ट लैंड	555.63	0.02
26.	नंगी चट्टान / पथरीली वेस्ट लैंड	57,747.11	1.82
27.	तीव्र ढाल क्षेत्र	9,097.38	0.29
28.	बर्फ से ढकी /हिमनदीय क्षेत्र	54,328.16	1.72
	योग	**5,52,692.00**	**17.45**
	योग (मिलियन हैक्टेयर)	**55.27**	**17.45**

(स्रोत : जर्नल ऑफ सॉयल एंड वाटर कंजरवेशन, 2009)

है। इससे भूमि के कटाव, भूतल व भूजल रसायन में परिवर्तन आ जाता है। खनन एवं खान के मलबे के फैलाव से भूमि निम्नीकृत (डिग्रेडेड) हो जाती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कोयला, लोहा, अभ्रक, मैगनीज, जिप्सम तथा चूना पत्थर के खनन की महत्वपूर्ण भूमिका है। परंतु दुर्भाग्यवश खनिज पदार्थों के अव्यवस्थित, अनुचित, अन्धाधुन्ध खनन तथा पर्यावरण संरक्षण के उपाय न करने के कारण भूमि संसाधन का ह्रास हुआ है। खनन हेतु की गई खुदाई, विस्फोट, सड़क निर्माण व वृक्षों की कटाई से वहाँ की कृषि भूमि, भू–जल एवं सम्पूर्ण पर्यावरण पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। ऐसे में खनन भूमियाँ निम्नीकृत हो जाती हैं।

कृषि भूमि को बंजर बनाने में उद्योगों का बड़ा हाथ है। उद्योगों से निकलने वाले प्रदूषित जल ने हजारों हैक्टेयर कृषि भूमि को बर्बाद कर दिया है। साथ ही भूजल को भी प्रदूषित कर विषैला कर दिया है। उद्योगों के कचरे में अपशिष्ट भारी धातुएं जैसे तांबा, लोहा, मैंगनीज, कोबाल्ट, जस्ता, कैडमियम, पारा, निकल और सीसा भी उर्वर भूमियों को बंजर बनाने में सहायक है। तापीय विद्युत उत्पादन केंद्रों की चिमनियों से निकली फ्लाई एश (Flyash) भी मृदा को निम्नीकृत कर रही है। एलुमिनियम के कारखाने के पास की भूमियों में फ्लोराइड की अधिकता बढ़ती जा रही है। इसका दुष्प्रभाव अंततः मानव स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है।

6. दोषपूर्ण कृषि क्रियाएं

दोषपूर्ण कृषि क्रियाओं के कारण भी बंजर भूमि निर्माण को बढ़ावा मिलता है। परंपरागत तरीकों से की जाने वाली खेती में भूमि कमजोर हो जाती है। खेतों की बार–बार जुताई करना, दोषपूर्ण सिंचाई प्रणाली अपनाना, उर्वरकों का अनुचित व असंतुलित प्रयोग व गलत भू–परिष्करण क्रियाएं उर्वर भूमि को निम्नीकृत कर रही हैं। इसी प्रकार लगातार एक ही तरह की फसलों की खेती करने से भी भूमि कमजोर हो जाती है। यह समस्या उन फसलों के साथ है, जिनमें अधिक गहरी जुताई की जरूरत पड़ती है। पर्वतीय क्षेत्रों में ढालू भूमि पर गहरी जुताई करने तथा ढाल के साथ ऊपर से नीचे की ओर जोतने से भी वर्षा ऋतु में मृदा कटाव की संभावना रहती है। पिछले दशकों से खेती में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशियों व संकर बीजों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इससे मृदा की उर्वरा शक्ति व स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। मृदा में पाए जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीवाणु व केंचुए नष्ट होते जा रहे हैं जिससे मृदा की क्षीणता के कारण पैदावार में कमी व गुणवत्ता में भी गिरावट आई है। इस तरह दोषपूर्ण कृषि क्रियाएं अपनाने से भूमि अपने गुण खो देती है और उसका निम्नीकरण होने लगता है।

7. मरुभवन (डेजर्टिफिकेशन)

पश्चिमी राजस्थान का लगभग 68 प्रतिशत भाग मरुभवन प्रक्रिया से प्रभावित है। भारत में इसका क्षेत्र राजस्थान के बाड़मेर, जैसलमेर व बीकानेर इलाकों में स्थित है। पश्चिमी राजस्थान में रेतीली मिट्टी की प्रमुखता है। यह मिट्टी बारीक, रेतीली और गहरी होती है। इसमें पानी संचय करने की क्षमता कम होती है। इन क्षेत्रों की भूमि में जीवांश पदार्थ का अभाव रहता है। शुष्क व अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की मृदाओं में वाष्पन अत्यधिक होने के कारण विलेय लवण ऊपर आ जाते हैं जिससे मृदा लवणीय बन जाती है। इन क्षेत्रों में रेत के बड़े–बड़े टीले पाए जाते हैं। यह क्षेत्र वायु अपरदन से अत्यधिक प्रभावित है। ग्रीष्म ऋतु की तेज हवाएं काफी मात्रा में मृदा कणों को दूर–दूर उड़ा ले जाती हैं। रेतीले टीले अधिकतर खेतों को ढके हुए हैं। रेत के जमाव के कारण मृदा की उर्वरता तथा फसल उत्पादन में कमी आ जाती है। इन रेतीली मृदाओं में 30 से 50 से.मी. गहराई पर कठोर परत मिलती है जिससे उससे आगे पौधों की जड़ें तथा जल प्रवेश नहीं कर पाते हैं। इन क्षेत्रों में भूजल 300–400 फीट गहरा मिलता है तथा वह भी लवणीय एवं क्षारीय है। वनस्पति कहीं–कहीं व कांटेदार है। यदि प्राकृतिक संसाधनों का क्षमता से अधिक उपयोग किया जाता है तो मरुभवन की प्रक्रिया शुरु हो जाती है।

8. लवणीयता / क्षारीयता

देश के विभिन्न भागों में 6.7 मिलियन हैक्टेयर भूमि लवणीयता / क्षारीयता से प्रभावित है जिसमें से लगभग 56 प्रतिशत भाग क्षारीय है। लवणीय पानी से विस्तृत भू–भाग में सिंचाई होती है। इससे मृदा में लवणों की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। लवणीयता की समस्या की शुरुआत नहरों द्वारा सिंचाई करने के साथ हुई। यह समस्या पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के नहरी क्षेत्रों में उग्र होती जा रही है। नहरों के आसपास के खेतों में हानिकारक लवणों को संचित देखा जा सकता है। स्थानीय भाषा में इन्हें रेह, खार या नमकीन मृदाएं कहा जाता है। इन मृदाओं में सल्फेट एवं क्लोराइड के विलेय लवणों की अधिकता रहती है। इनका निर्माण खराब जल निकास वाले नदी–नालों व नहरों के पानी से सिंचाई करने पर होता है। साथ ही अत्यधिक मात्रा में सिंचाई करने से भूजल स्तर ऊपर आ जाता है। प्रायः किसान खेतों में नहर का पानी काट देने के बाद सिंचाई की मात्रा पर ध्यान नहीं देते हैं। खेतों में आवश्यकता से अधिक पानी भर जाता है जो कि लवणीयता उत्पन्न करने में सहायक हैं। लवणों की सांद्रता बढ़ने पर मृदा धीरे–धीरे बंजर बन जाती है। राजस्थान, पंजाब, गुजरात व हरियाणा के अनेक क्षेत्रों में प्राकृतिक लवणीयता पाई जाती है। यह भू–भाग लवणों की अधिकता के कारण वनस्पति विहीन है। कहीं–कहीं पर विलायती बबूल तथा लवण सहन करने वाली वनस्पतियां आच्छादित हैं।

अधिक कार्बोनेट युक्त पानी से सिंचित मृदाओं में क्षारीयता का प्रभाव बढ़ जाता है। कुछ वर्षों बाद फसल की पैदावार में कमी आ जाती है। इन मृदाओं को स्थानीय भाषा में ऊसर, कल्लर या क्षार कहते हैं। इन मृदाओं में जल कई दिनों तक खड़ा रहता है क्योंकि 40 से.मी. की गहराई पर कंकड़ की परत पाई जाती है। ये मृदाएं सूखने पर अत्यन्त दरार युक्त हो जाती हैं। इन भूखंडों की ऊपरी सतह पर राख जैसे काले रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। क्षारीयता के कारण भूमि की भौतिक दशा खराब हो जाती है। इस प्रकार की भूमियों में

सोडियम लवणों की अधिकता व जलभराव होने से बोई गई फसलों की वृद्धि सामान्य रूप से नहीं हो पाती है। भूमि की भौतिक दशा खराब होने के कारण उपजाऊ शक्ति का ह्रास हो जाता है।

9. अम्लीयता

हमारे देश में लगभग 259 लाख हैक्टेयर क्षेत्र मृदा अम्लीयता से प्रभावित हैं। समस्याग्रस्त मृदाओं का प्रमुख स्थान है। देश के उत्तरी–पूर्वी राज्यों, पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसा में अम्लीयता की समस्या प्रमुख रूप से पाई जाती है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र के तटीय क्षेत्रों में अम्लीयता की समस्या से मृदा ग्रसित है। मृदा अम्लीयता मृदा गुणों व मृदा स्वास्थ्य को प्रभावित करती है जिसका पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अम्लीयता के कारण मृदाओं में एलुमिनियम, मैंगनीज व आयरन की आविषता पौधों की वृद्धि व विकास में बाधक रहती है। अम्लीय वर्षा, अम्लीय उर्वरकों जैसे अमोनियम सल्फेट तथा अमोनियम नाइट्रेट जैसे उर्वरकों का लगातार प्रयोग, मृदा के pH मान को कम करके अम्लीयता उत्पन्न करने में विशेष योगदान देता है। मृदा से कैल्सियम व मैंग्नीशियम का अधिक मात्रा में अवशोषण करने वाली फसलों जैसे आलू, तम्बाकू व चुकंदर को लगातार उगाने से मृदा में अम्लीयता बढ़ने की अधिक संभावना रहती है। क्वार्टजाइट चट्टानों से होकर बहने वाली जल धारा का pH प्रायः अम्लीय होता है। अतः यह जल सामान्य मृदाओं को अम्लीय बना देता है।

बंजर भूमि सुधार एवं प्रबंधन

बंजर भूमियों के विकास के लिए भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों जैसे ग्रामीण विकास मंत्रालय में भूमि संसाधन विभाग, कृषि मंत्रालय, पर्यावरण और वन मंत्रालयों द्वारा बंजर भूमि की कम हो रही उत्पादकता तथा प्राकृतिक संसाधनों की क्षति पर रोक लगाने के उद्देश्य से बंजर भूमि को विकसित करने हेतु विभिन्न कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

सारणी 2 : भारत की बंजर भूमियाँ (एन.बी.एस.एस.एल.यू.पी.–2005, 1:250, 000 के पैमाने पर)
(क्षेत्र '000 है.)

क्र. सं.	राज्य	जल क्षरण	वायु क्षरण	जल भराव / बाढ़	लवणीयता / क्षारीयता	मृदा अम्लीयता	संकीर्ण समस्याएं	कुल निम्नीकृत क्षेत्र	कुल भौगोलिक क्षेत्र	डिग्रेडेड क्षेत्र (%)
1.	जम्मू एवं कश्मीर	5,460	1,360	200	0	0	0	7,020	22,224	31.6
2.	हिमाचल प्रदेश	2,718	0	1,303	0	157	0	4,178	5,567	75.0
3.	पंजाब	372	282	338	288	0	0	1,280	5,036	25.4
4.	हरियाणा	315	536	146	256	0	214	1,467	4,421	33.2
5.	उत्तर प्रदेश + उत्तराखंड	11,392	212	2,350	1,370	0	0	15,324	29,441	52.0
6.	दिल्ली	55	0	6	10	0	11	82	148	55.4
7.	राजस्थान	3,137	6,650	53	1,418	0	110	11,368	34,224	33.2
8.	गुजरात	5,207	443	523	294	0	1,666	8,133	19,602	41.5
9.	महाराष्ट्र	11,179	0	0	1,056	517	303	13,055	30,771	42.4
10.	मध्य प्रदेश + छत्तीसगढ़	17,883	0	359	46	6,796	1,126	26,210	44,345	59.1
11.	केरला	76	0	2,098	0	138	296	2,608	3,886	67.1
12.	तमिलनाडु	4,926	0	96	96	78	138	5,334	13,006	41.0
13.	कर्नाटक	5,810	0	941	110	58	712	7,631	19,179	39.8
14.	आंध्र प्रदेश	11,518	0	1,896	517	905	156	14,992	27,505	54.5
15.	गोवा	60	0	76	0.4	2	24	162.4	370	43.9
16.	बिहार + झारखंड़	3,024	0	2,001	229	1,029	0	6,283	17,387	36.1
17.	पश्चिम बंगाल	1,197	0	710	170	556	119	2,752	8,875	31.0
18.	उड़ीसा	5,028	0	681	75	263	75	6,122	15,571	39.3
19.	सिक्किम	158	0	0	0	76	0	234	710	33.0
20.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	187	0	0	9	0	9	205	825	24.8
21.	अरुणाचल प्रदेश	2,372	0	176	0	1,955	0	4,503	8,374	53.8
22.	मिजोरम	137	0	0	0	1,050	694	1,881	2,108	89.2
23.	मणिपुर	133	0	111	0	481	227	952	2,233	42.6
24.	नगालैंड	390	0	0	0	127	478	995	1,658	60.0
25.	असम	688	0	37	0	612	876	2,213	7,844	28.2
26.	त्रिपुरा	121	0	191	0	203	113	628	1,049	59.9
27.	मेघालय	137	0	7	0	1,030	34	1208	2,243	53.9
	योग	93,680	9,483	14,299	5,944.4	16,033	7,381	1,46,820	3,28,602	

(स्रोत : जर्नल ऑफ सॉयल एंड वाटर कंजरवेशन – 2009)

1. बारानी क्षेत्रों के लिए राष्ट्रीय जलागम (वाटरशेड) विकास परियोजना (एन.डब्ल्यू.डी.पी.आर.ए.)।
2. नदी–घाटी परियोजना और बाढ़ संभावित क्षेत्र में मृदा और जल संरक्षण (आर.वी.पी. और एफ.पी.आर.)।
3. क्षारीय मृदाओं का सुधार (आर.ए.एस.)
4. झूम खेती क्षेत्रों में जलागम विकास परियोजना (डब्ल्यू.डी.पी.एस.सी.ए.)।
5. सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.)
6. मरुस्थल विकास कार्यक्रम (डी.डी.पी.)
7. एकीकृत बंजर भूमि विकास कार्यक्रम (आई.डब्ल्यू.डी.पी.)

उपर्युक्त परियोजनाओं के अंतर्गत प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं :

1. ग्रामीण समुदाय के लिए आय के सतत स्रोत सृजित करने हेतु सिंचाई, वृक्षारोपण, बागवानी, चरागाह विकास, मछली पालन आदि परियोजनाओं के लिए तथा पेयजल आपूर्ति के लिए वर्षा जल की एक–एक बूंद का संग्रहण एवं संरक्षण करना।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन, गरीबी उन्मूलन, सामुदायिक अधिकार, समानता का अधिकार तथा सामाजिक व आर्थिक संसाधनों का विकास।
3. ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास के लिए फसलों,

मानव व पशुधन पर सूखे और मरुस्थलीय जैसी भीषण जलवायु स्थितियों के प्रतिकूल प्रभाव को कम करना।

4. प्राकृतिक संसाधनों का उचित दोहन तथा आपदा के प्रतिकूल प्रभाव में कमी, प्राकृतिक संसाधनों का विकास।
5. सूखे से बचाव हेतु वृक्षारोपण तथा वन संरक्षण।
6. क्षारीय भूमि सुधार/विकास।
7. जलागम परियोजना के अंतर्गत ग्राम पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास एवं आय के संसाधनों को सुनिश्चित करना।
8. ऐसे साधारण, सरल और सस्ते तकनीकी उपायों का विकास करना जिन्हें स्थानीय तौर पर उपलब्ध तकनीकी ज्ञान और उपलब्ध सामग्री के आधार पर उपयोग में लाया जा सके।
9. बाढ़ नियंत्रण तथा जल भराव के क्षेत्रों में जल निकासी का प्रबंधन।
10. चयनित क्षेत्रों का समग्र विकास करना। अनुसूचित जाति, जनजाति और उपेक्षित वर्गों के लिए सिंचाई की व्यवस्था उपलब्ध कराना।

बंजर भूमि सुधार परियोजनाओं की उपलब्धियाँ

1. ऐसे क्षेत्र जहाँ बंजर भूमि अधिक हो, वहाँ पर जलागम विकास कार्यक्रम चलाना चाहिए। जलागम (वाटरशेड) विकास क्षेत्रों के अंतर्गत फसलों की पैदावार में संतोषजनक वृद्धि दर्ज की गई।
2. बंजर भूमि सुधार कार्यक्रमों से फसल सघनता में भी बढ़ोतरी हुई। फसल पद्धति में मूलभूत परिवर्तन हुआ। जिन क्षेत्रों में वर्ष में केवल एक ही फसल ली जा सकती थी, वहाँ पर अब वर्ष में दो फसलें ली जा रही हैं। इसका सीधा संबंध शुष्क क्षेत्रों में पानी की उपलब्धता बढ़ने से है। कुछ बरानी क्षेत्रों में तो फसलों की उन्नत व संकर प्रजातियों को अपनाया जा रहा है।
3. शुष्क व बारानी क्षेत्रों में मृदा क्षरण में कमी आई। ग्रामीण क्षेत्र के ऊसर, परती, बंजर एवं कृषि हेतु पूर्णरूप से अनुपयोगी भूमि पर बायो डीजल पेड़–जेट्रोफा व करंज रोपण को प्रोत्साहन दिया गया।
4. मृदा एवं जल संरक्षण पद्धति अपनाने से भूजल स्तर बढ़ाने में मदद मिली। बंजर भूमि क्षेत्रों में भूजल स्तर में 0.8 मीटर से 7 मीटर तक की वृद्धि हुई।
5. उपचारित बंजर भूमियों में फसल विविधीकरण (कृषि, वानिकी, बागवानी, पशुपालन) अपनाने से पारिवारिक आय में वृद्धि दर्ज की गई।
6. जलागम क्षेत्र में बाढ़ की तीव्रता में भी कमी पाई गई। मिट्टी व पानी के संरक्षण उपरांत वनस्पति विहीन पहाड़ियों व रेतीले टीलों पर ईंधन लकड़ी व चारा उत्पादन हेतु वनस्पति का विकास व निचले क्षेत्रों में बाढ़ से सुरक्षा की जा सकती है।
7. मृदा संरक्षण विधियां अपनाने से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाने में मदद मिली जिसमें प्रमुख रूप से डेरी उद्योग, मुर्गी पालन, रेशम उद्योग इत्यादि शामिल हैं। ग्रामीण परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुदृढ़ीकरण के साथ–साथ उद्योगों को भी बढ़ावा मिला।
8. केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा उत्तर प्रदेश और हरियाणा के चयनित जिलों में क्षारीय मृदा सुधार कार्यक्रम से समस्याग्रस्त मृदाओं का pH मान 9.4–10.5 से 8.9–9.2 तक कम करने में मदद मिली। इसके अलावा कार्बनिक कार्बन की मात्रा में 0.15 से 0.38 की वृद्धि हुई।
9. लवणीय/क्षारीय मृदाओं में धान की पैदावार में 19 से 41 कुन्तल प्रति हैक्टेयर तक वृद्धि हुई। क्षारीय भूमि सुधार से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अतिरिक्त साधन बढ़े।
10. क्षारीय भूमि सुधार से भूमि की कीमत, फसल की औसत उपज और फसल सघनता में बढ़ोतरी हुई। क्षारीय भूमि सुधार से खेती द्वारा प्रत्येक परिवार की आय में भी बढ़ोतरी हुई।
11. बंजर भूमि सुधार कार्यक्रमों से भूमि उपयोग में अत्यधिक सुधार हुआ है। इससे शुद्ध बुवाई क्षेत्र, कुल कृषित क्षेत्र और एक बार से अधिक बोए गए क्षेत्र में वृद्धि हुई।
12. बंजर भूमि सुधार कार्यक्रमों से पशुओं की संख्या में भी वृद्धि हुई। मुख्यतः सुधरी नस्लों को बढ़ावा मिला। बहुत से राज्यों में मछली पालन व्यवसाय में बढ़ोतरी हुई है।
13. ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त क्षेत्र ऐसी भूमि का है जो अधिकांश समय पानी भरे रहने के कारण कृषि योग्य बेकार भूमि है। ऐसी भूमि पर तालाबों का निर्माण कराकर मछली पालन को बढ़ावा देकर गरीब परिवारों की आय में इजाफा हुआ।

निष्कर्ष

तेजी से बढ़ते शहरीकरण, औद्योगीकरण व आधुनिकीकरण की वजह से खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल दिनोंदिन घटता जा रहा है। भविष्य में इसके बढ़ने की संभावना नगण्य है। इस संबंध में बंजर भूमियों को सुधार कर खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाने में मदद मिल सकती है। बंजर भूमि में वर्षा जल भरा रहता है जिसके परिणामस्वरूप मच्छरों व अन्य बीमारियों के फैलने की आशंका रहती है। इनके सुधार से इन दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है। बंजर भूमि सुधार, ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास के लिए एक अनुपम तकनीक है जिसके द्वारा बेहतर खाद्यान्न उत्पादन, अधिक कृषि आय और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध करा कर सामाजिक–आर्थिक उन्नति सुनिश्चित की जा सकती है।

o o o

घर को ठंडा रखेंगे खास तौर से तैयार किए गए शीशे

एयरकंडीशनर अब बीते दिनों की बात होगी क्योंकि वैज्ञानिकों ने शीशे की ऐसी खिड़कियां बना ली हैं जो गर्मी में ठंडक और जाड़े में गर्मी का अहसास दिलाएंगी। विशिष्ट रसायन द्वारा लेपित ये शीशे कम आय वाले लोगों के लिए एक अच्छी खबर है। भारत जैसे विकासशील देशों में तो विशिष्ट रसायन द्वारा लेपित शीशों से बनी खिड़कियां धूम मचा सकती हैं। 'क्वींसलैंड यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी' के शोधकर्ताओं के कहा कि बड़ी मात्रा में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार एयरकंडीशनर का यह पर्यावरण अनुकूल विकल्प होगा। शोधकर्ताओं के अनुसार विभिन्न प्रकार के चमकदार परत वाले शीशें से घरों में अत्यधिक ऊर्जा की खपत कम कर 45 फीसदी तक बिजली की बचत हो सकेगी। साथ ही कार्बन उत्सर्जन में कमी आएगी। शोधकर्ता डॉ. बेल के अनुसार वैश्विक तपन (ग्लोबल वार्मिंग) के लिए जिम्मेदार गैसों के उत्सर्जन में एयरकंडीशनरों का बहुत बड़ा हाथ है। उनके अनुसार वातानुकूलित घरों और ऑफिसों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। बेल ने कहा कि बाजार में उपलब्ध ये शीशे एयरकंडीशनर के बराबर तो ठंडा नहीं करेंगे पर आपको चिलचिलाती गर्मी से राहत दिलाने के लिए ये काफी हैं। ऐसे शीशे वाली खिड़कियों में टिंटेड ग्लास, फिर एयरगैप और उसके बाद खास किस्म की ऊष्मारोधी परत वाले लो–ई ग्लास का इस्तेमाल किया गया है। बेल के अनुसार अच्छी खिड़कियां घरों को ऊष्मारोधी बनाने में मदद करती हैं। इससे जाड़े में घर गर्म और गर्मी में ठंडा रहता है। शोधकर्ता ने कहा कि शीशे पर रासायनिक लेप वाले खास किस्म के खिड़कियों के ढांचे जल्द ही हर घर की शोभा बढ़ाएंगे।

दीपक कोहली

5

प्रचक्रण इलेक्ट्रॉनिकी

• डॉ. पुरुषोत्तम पोद्दार*

प्रचक्रण इलेक्ट्रॉनिकी में इलेक्ट्रॉन के प्रचक्रण को पूर्णतः नियंत्रित कर विद्युत–धारा के प्रवाह को आवश्यकतानुसार नियंत्रित किया जाता है। इससे बना प्रचक्रण क्षेत्र–प्रभाव, ट्रांजिस्टर के परंपरागत क्षेत्र–प्रभाव की तुलना में काफी अधिक महत्व रखता है। इसी की सहायता से धात्विक बहु परतों में बृहत् चुंबकत्व प्रतिरोध (GMR) की खोज की गई जिसके लिए खोजी दलों को 2007 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यहाँ देखा गया कि इलेट्रॉन का प्रचक्रण ही सूचना प्रक्रमण के लिए जिम्मेवार होता है। बृहत् चुंबकत्व प्रतिरोध की सहायता से सीडी में सूचना भंडारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है तथा डिस्क के सतह पर कम से कम क्षेत्र में अधिक से अधिक सूचना का भंडारण किया जा सकता है। इसका दूसरा वर्ग, सुरंगन चुंबकत्व प्रतिरोध (TMR) प्रभाव पर आधारित है (जोकि प्रचक्रण आधारित सुरंगन है)। ऐसे सुरंगन चुंबकत्व प्रतिरोध का उपयोग चुंबकीय यादृच्छिक अभिगम स्मृति (DRAM) उपकरण बनाने में किया जाता है जोकि परंपरागत गतिक यादृच्छिक अभिगम स्मृति (DRAM) से काफी अच्छा होता है। शक्ति खत्म हो जाने पर भी यह काम करते रहते हैं।

"प्रचक्रण इलेक्ट्रॉनिकी" शब्द, प्रचक्रण–आधारित इलेक्ट्रॉनिकी का संक्षिप्त रूप है। इस संकल्पना का प्रतिपादन सर्वप्रथम वोल्फ ने बीसवीं शताब्दी के अंत में एक विशेष व्याख्यान में किया था। आज इसमें सभी प्रकार के अर्थात धातु–आधारित, अर्द्धचालक–आधारित या संकर–संरचना उपकरण शामिल हैं। विद्युत धारा के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए आवेश के ऊपर इलेक्ट्रॉन के प्रचक्रण का पूर्णतः उपयोग किया जाता है। अर्थात् यह प्रचक्रण धारा में एक अतिरिक्त "स्वतंत्रता की कोटि" जोड़ता है। सिद्धांततः यह विचार काफी उद्दीप्त करता है कि प्रायोगिक रूप में प्रचक्रण द्वारा ध्रुवित इलेक्ट्रॉन के प्रवाह को उत्पन्न, अंतःस्थापित, व्यवस्थित तथा संसूचित किया जा सकता है।

सर्वप्रथम 1990 से पहले मगध विश्वविद्यालय में सुप्रिया दत्ता ने प्रचक्रण– ध्रुवितक्षेत्रप्रभाव ट्रांजिस्टर के लिए एक रूपरेखा प्रस्तावित की थी जिसे दत्ता–दास–प्रचक्रण क्षेत्रप्रभाव ट्रांजिस्टर के रूप में जाना जाता था। परंपरागत क्षेत्रप्रभाव ट्रांजिस्टर में एक संकीर्ण अर्धचालक वाहिका द्वारा स्रोत तथा ड्रेन नामक दो इलैक्ट्राडों के बीच प्रवाह होता है। जब वोल्टता, द्वार – इलैक्ट्रोड पर आरोपित की जाती है, जोकि वाहिका के ऊपर होती है तो परिणामी विद्युतीय क्षेत्र इलक्ट्रॉनों को वाहिका से बाहर खींचती है तथा वाहिका को विद्युत–रोधी से जोड़ती है। दत्ता–दास प्रचक्रण क्षेत्र प्रभाव ट्रांजिस्टर में एक लोह–चुंबकीय स्रोत तथा एक ड्रेन होता है जिससे कि वाहिका में प्रवाहित विद्युत धारा प्रचक्रण ध्रुवित हो जाती है। जब वोल्टता को गेट पर आरोपित किया जाता है तथा जैसे ही वे वाहिका से होकर गुजरते हैं तो ड्रेन इन प्रतिसंरेखित इलेक्ट्रॉनों को त्याग देती है और प्रचक्रणें घूमती हैं। गेट वोल्टता विषम संरचना के विपरीत दिशा में एक विद्युतीय क्षेत्र उत्पन्न करती है जिससे उत्पन्न चुंबकीय क्षेत्र को रशबा–क्षेत्र कहा जाता है। सर्वप्रथम ईमानुल रशबा ने यह बताया है कि

4954 HRD/10—5 A

कैसे विद्युतीय क्षेत्र चुंबकीय क्षेत्र में रूपांतरित होता है तथा वह इलेक्ट्रॉन के प्रचक्रण अवस्था को कैसे प्रभावित करता है। चूँकि यह क्षेत्र, विद्युतीय क्षेत्र तथा अभिगमन दिशा दोनों के लंबवत होता है, अतः स्थापित इलेक्ट्रॉन का प्रचक्रण पुरस्सरित कर सकता है, इस कारण प्रचक्रण धारा मॉडुलित होगी। यह प्रचक्रण क्षेत्र प्रभाव ट्रांजिस्टर के परंपरागत क्षेत्रप्रभाव ट्रांजिस्टर की तुलना में काफी अधिक महत्व रखता है। इस प्रकार दत्ता–दास प्रचक्रण क्षेत्रप्रभाव ट्रांजिस्टर द्वारा मूल कार्य करने के बहुत सारे प्रयास किए गए। उदाहरणस्वरूप :

1. पॉल ड्रूड संस्थान, बर्लिन में क्लौस प्लुग के दल ने लोह से गेलियम – आर्सेनिक प्रचक्रण टीका स्थापित करने का प्रयास किया था, हालांकि इसमें उचित दक्षता प्राप्त करने में अभी कठिनाइयाँ हैं। इसका एक नया उदाहरण प्राप्त किया गया जब पेरिस सूद विश्वविद्यालय के अलवर्ट फर्ट तथा फौर्सचंग्स – जेनट्रम जूलिच के पीटर ग्रूनवर्ग के दलों ने स्वतंत्र रूप से धात्विक बहु परतों में बृहत् चुंबकत्व प्रतिरोध (GMR) की खोज की जिसके लिए इन्हें 2007 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह चुंबक–इलेक्ट्रॉनिकी का प्रारंभ था जिससे इलेक्ट्रॉन के आवेश की अपेक्षा उसका प्रचक्रण भी महत्वपूर्ण है और जो सूचना प्रक्रमण के लिए जिम्मेवार होता है। चुंबकत्व प्रतिरोध कुछ नहीं बल्कि चुंबकीय क्षेत्र के कारण विद्युतीय प्रतिरोध में परिवर्तन है। यह एक गुण है जिसका उपयोग चुंबकीय क्षेत्र के जमा आँकड़े के अध्ययन में किया जाता है और इस प्रकार यह सूचना भंडारण उद्योग में तीव्रता से उपयोग किया जाता है। बृहत् चुंबकत्व प्रतिरोध प्रभाव की सहायता से सीडी में सूचना–भंडारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है तथा डिस्क के सतह पर कम से कम क्षेत्र में अधिक से अधिक सूचना एकत्र की जा सकती है जिसका आजकल व्यवसायिक रूप से उपयोग हो रहा है।
2. प्रचक्रण पदार्थों का दूसरा निकट संबंधित वर्ग सुरंगन चुंबकत्व प्रतिरोध प्रभाव पर आधारित है। यह प्रभाव तब उत्पन्न होता है जब लोह चुंबकीय पदार्थ की दो परतें, रोधी ऑक्साइड अर्थात MgO के पतले परत के द्वारा विलगित रहता है। सुरंगन चुंबकत्व प्रतिरोध (TMR) का सिद्धांत प्रचक्रण आधारित सुरंगन पर आधारित है, जिसका प्रदर्शन सर्वप्रथम 1975 में फ्रांस में माइकेल जुलियर ने निम्न ताप पर किया था। इसके बाद 1995 में अमरीका के मेशाचुट्स प्रौद्योगिकी संस्थान में इसका प्रदर्शन जगदीश मुदेरा ने कमरे के ताप पर किया था। ऐसे सुरंगन चुंबकत्व प्रतिरोध उपकरण का उपयोग चुंबकीय यादृच्छिक अभिगम स्मृति (MRAM) उपकरण बनाने में किया जाता है जोकि परंपरागत गतिक यादृच्छिक अभिगम स्मृति (DRAM) से काफी अच्छा होता है। यह अवाष्पशील होता है। इस कारण शक्ति खत्म हो जाने पर भी यह काम करता रहता है।

प्रचक्रणानिकी के उभरते क्षेत्र का मुख्य लक्ष्य प्रचक्रण आधारित परिघटना को समझना है तथा नए प्रकार्यों और उपकरणों के लिए इसका उपयोग करना है। बहुपरत तंत्रों में प्रचक्रण आधारित तथा सुरंगन चुंबकत्व प्रतिरोध आधारित उपकरणों में उपयोग किया जाता है।

o o o

4954 HRD/10—5 B

6

उच्च कोटि के बीज और उनकी प्राप्ति

डॉ. शंकर लाल*

1. बीज क्या है?

बीज पौधे का वह अंग है जो फल में सुरक्षित रहता है और नए पौधे को जन्म देता है। बीज में भ्रूण पाया जाता है जो सुषुप्तावस्था में रहता है। बीज पौधे के जीवन को दो पीढ़ियों के मध्य जोड़ने वाली जैविक श्रृंखला है जो सभी गुणों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अंतरित करने का काम करती है। कृषि उत्पादन में बीज की शुद्धता एवं बीज की अंकुरण क्षमता का विशेष महत्व है।

2. बीज का महत्व

फसल की उत्तम उपज प्राप्त करने के लिए सभी आधुनिक तकनीक को अपनाने पर भी पूरा लाभ नहीं मिल सकता जब तक किसान उच्च कोटि के बीजों का प्रयोग न करें। इसको हम दूसरे ढंग से कह सकते हैं कि फसल उत्पादन की नींव ही अच्छे बीज का उपयोग करना है। अतः किसानों को अच्छे बीज की उपयोगिता की जानकारी होना आवश्यक है तभी वह उन्नतशील कृषक की श्रेणी में आ सकेगा।

3. उत्तम बीज के गुण

कोई बीज उत्तम है या नहीं, यह ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए :

(i) **बीज की आनुवंशिक शुद्धता** : अच्छे बीज का प्रमुख गुण यह है कि वह आनुवंशिक रूप से शुद्ध हो। इससे फसल की पैदावार अच्छी होती है। इसीलिए बीज को प्रति वर्ष बदलना चाहिए विशेषतौर से उन फसलों का जिनमें परपरागण होता है, जैसे मक्का, बाजरा, ज्वार, अरहर आदि।

(ii) **बीज की जातीय शुद्धता** : जातीय शुद्धता से तात्पर्य है कि बीज एक ही जाति के होने चाहिए। उदाहरणार्थ यदि गेहूँ की पी.वी.डब्ल्यू. 343 जाति है तो उसमें अन्य जातियों जैसे के 68, सी 306 के बीज नहीं मिले होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो फसल के पौधों में एकसमानता नहीं होगी और पैदावार में भी कमी आएगी।

(iii) **बीज की भौतिक शुद्धता** : बीज में किसी खरपतवार या अन्य दूसरी फसलों के बीज, मिट्टी के कण, भूसा, डंठल, इत्यादि की मिलावट नहीं होनी चाहिए नहीं तो खेत में फसल के पौधों की पर्याप्त वृद्धि नहीं होगी और इससे उत्पादन कम होगा।

(iv) **बीज की कायिक शुद्धता** : दैहिक शुद्धता के अंतर्गत बीज का आकार, चमक, रंग इत्यादि आते हैं। यदि बीज सिकुड़े हुए बदरंग और छोटे झुर्रीदार हैं तो अंकुरण प्रभावित होगा, फलस्वरूप पैदावार कम प्राप्त होगी।

(v) **बीज की क्षतिग्रस्तता** : बीज कटे--फटे नहीं होने चाहिए क्योंकि थ्रैशिंग करते समय रोग ग्रसित दाने टूट जाते हैं। टूटे हुए दानों से ठीक अंकुरण नहीं होता। इसलिए बीज साफ, छने हुए और ग्रेडेड होने चाहिए।

(vi) **बीज की आयु** : बीज अधिक पुराने नहीं होने चाहिए। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि अधिक पुराने बीज में ओज शक्ति एवं अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। अतः अधिक पुराने बीज को नहीं बोना चाहिए।

(vii) **बीज की रोग ग्रस्तता** : बुवाई के लिए उन्ही बीजों का प्रयोग करना चाहिए जो स्वस्थ हों क्योंकि बहुत सी बीमारियाँ बीज से फैलती हैं जैसे गेहूँ का कंडवा रोग।

(viii) **बीज की परिपक्वता** : जब फसल अच्छी तरह से पकी न हो और कुछ समय पहले ही काट ली जाती है तो उसका बीज नहीं बोना चाहिए। क्योंकि ऐसे बीज का अंकुरण कम होता है।

(ix) **बीज की अंकुरण क्षमता** : बीज की अंकुरण क्षमता 90–100 प्रतिशत होनी चाहिए। अंकुरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सुषुप्त भ्रूण नमी की सहायता से सक्रिय होकर एक नन्हें पौधे को जन्म देता है। बीज के अंकुरण के लिए पानी की उचित मात्रा, उचित ताप, उचित वायु और ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है।

अधिकांश फसलों की प्रजातियों में एक निश्चित समय के बाद उनके मूलस्वरूप में परिवर्तन आ जाता है और यह परिर्वतन उस जाति की उपज पर प्रतिकूल असर डालता है। अतः जातीय शुद्धता बनाए रखने के लिए और उसमें उत्पन्न विभिन्नता को दूर करने के लिए नया बीज बनाना चाहिए।

4. बुवाई पद्धति एवं फसल

बोने से पहले सीड–ड्रिल को अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी संस्तुति के अनुसार होनी चाहिए। ऐसा करने से सस्य क्रियाओं को अपनाने में सुविधा रहती है। प्रत्येक 10 मीटर के बाद एक मीटर की जगह खाली छोड़ देना चाहिए। जल निकास के लिए नालियाँ बनाएं जिससे अतिरिक्त पानी खेत से बाहर निकल जाए।

5. खरपतवार

बुवाई के 20 तथा 40–45 दिन बाद खरपतवार निकालना आवश्यक होता है। अनावश्यक विजातीय पौधों को भी निकाल देना चाहिए– प्रथम बार निराई करते समय, दूसरी बार फूल आते समय और तीसरी बार दाना भरते समय।

6. कटाई व थ्रेशिंग

खेत में दो मीटर का बार्डर छोड़कर शेष खेत की फसल को काटकर अलग किसी त्रिपाल पर किसी साफ जगह रखें। थ्रेशिंग से पहले थ्रेशर मशीन को अच्छी तरह साफ कर लें।

7. बीज प्रसंस्करण

बीज को विभिन्न छलनी द्वारा छानकर सफाई करके आकार के अनुसार ग्रेडिंग करके अलग–अलग लाटों में कर लें। यदि नमी अधिक हो तो अच्छी तरह सुखा लें और बाद में भंडारण करें।

7

अखाद्य तेल बीजों से आर्थिक समृद्धि

डॉ. एन. के. बौहरा*

वनस्पतियों का हमारे जीवन में बड़ा महत्व है। हम भोजन, वस्त्र एवं आवास के लिए पेड़–पौधों पर निर्भर रहते हैं। मानव अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति प्रदत्त वन संपदा पर सदैव निर्भर रहा है। वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या–जन्य समस्याओं में भोजन सर्वोपरि है। देश में प्रोटीन व वसा की मांग और आपूर्ति में असंतुलन लगातार बढ़ता जा रहा है। इस असंतुलन को कम करने के लिए गैर परंपरागत तैलीय बीजों से तेल निष्कर्षण की आवश्यकता है। तिलहन और तेल हमारी ऊर्जा एवं प्रोट्रीन की आवश्यकता की अंशतः पूर्ति करते हैं। दैनिक आहार में प्रयुक्त होने के अतिरिक्त वनस्पति तेलों का उपयोग विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों, जैसे साबुन और डिटर्जेन्ट, पेन्ट, वार्निश, सौंदर्य–प्रसाधन, औषधि, प्लास्टिक, चर्म, वस्त्र, सरफेस कोटिंग, स्नेहक (लुब्रीकेन्ट्स) आदि के उत्पादन में होता है। वास्तव में वनस्पति तेलों का उपयोग हमारे दैनिक जीवन की एक जरूरी आवश्यकता है।

भारत के वनों में लगभग 100 से अधिक वनस्पतियों के बीजों से काफी मात्रा में अच्छा तेल निकाला जा सकता है। इनमें से कुछ प्रजातियों से प्राप्त बीजों से वर्तमान में तेल निकाला भी जा रहा है। साल, महुआ, नीम, करंज, कुसुम आदि के अतिरिक्त खाकन, कोकम, इंडी, नागेसर आदि से भी तेल निकाला जाता है। वृक्ष मूल की कई अन्य प्रजातियां– जैसे आम की गुठली, अरंडी, पलास, बबूल, रतनजोत, इमली बीज, चरोटा व काजू आदि से भी तेल निकाला जा सकता है। कुछ वर्षों से आर्जिमोन, मैक्सिकन पॉपी आदि का भी उपयोग तेल निकालने में किया जा रहा है। इन पादप–प्रजातियों का तेल विभिन्न रूपों में उपयोगी है। वर्तमान में तेल व वसा का आयात बढ़ने तथा मांग एवं आपूर्ति का अंतराल बढ़ने से भारत में तेल बीजों के विभिन्न स्रोतों पर अनुसंधान की आवश्यकता जरूरी हो गई है। विभिन्न अखाद्य तेल बीज वाले पादपों एवं उनके उपयोग इस प्रकार हैं :

(1) करंज तेल : भारत में तेल के कुल उत्पादन का एक बड़ा भाग करंज तेल का है। करंज के बीजों में 27–35 प्रतिशत सॉफ्ट ऑयल होता है। इसका आयोडीन मान 84, सैप मान 185–195 तथा टार्टरी 34 प्रतिशत होती है तथा इसमें ओलकि अम्ल मुख्य वसा अम्ल होता है। करंज तेल का उप–योग मुख्यतः साबुन बनाने में एवं चमड़े की टैनिंग में होता है। करंज तेल का उपयोग चमड़ी के रोगों में औषधि के रूप में होता है। करंज की खली होती है व इसकी महक तीखी होती है। इसकी खली खाद, कवकनाशी एवं कीटनाशी के रूप में प्रयुक्त होती है। करंज की खली में नाइट्रोजन 5.4 प्रतिशत, पोटेशियम 1.2 प्रतिशत एवं फॉस्फोरस 0.5 प्रतिशत होता है तथा इसका उपयोग उत्तम खाद के रूप में होता है। इसमें 30–35 प्रतिशत प्रोटीन होता है परंतु यह खाने योग्य नहीं होती। करंज के वृक्ष संपूर्ण भारत में मिलते हैं। एक करंज वृक्ष से 70–80 किलोग्राम बीज प्राप्त हो सकते हैं। इन बीजों से प्रायः 30–35 प्रतिशत तेल मिलता है, जिनका विभिन्न रूपों में उपयोग होता है। आधुनिक युग में करंज तेल का उपयोग पेट्रोलियम उत्पाद के रूप में उपयोगी पाया गया है। इसमें पाया जाने वाला एक फ्यूरोफ्ले वोनॉयड करंजीन, त्वचा के वर्णक को बढ़ाने में मदद करता है।

(2) खाकन तेल : यह साल्वेडोरा आयडीज से निकाला जाता है। खाकन मध्य भारत, राजस्थान, गुजरात और उत्तर प्रदेश में होता है तथा इसके फल जून–जुलाई में तैयार होते हैं। इसमें लगभग 40 प्रतिशत तक तेल होता है। इसमें संतृप्त वसा अम्लो लारिक (36 प्रतिशत तक), मिरिस्टिक (51 प्रतिशत तक) के अलावा कुछ असंतृप्त वसा अम्ल भी होते हैं।

(3) बबूल तेल : बबूल बीज प्रोट्रीन का एक अच्छा स्रोत है। इसमें 20 से 27 प्रतिशत तक कुल प्रोटीन होता है तथा यह मध्यम वर्ग का ऊर्जा का स्रोत है। इसमें कुल पाच्य पोषक तत्व 59 प्रतिशत तथा 63 प्रतिशत तक नाइट्रोजन युक्त तत्व होते हैं। यह मुख्यतः पशुओं को खिलाया जाता है। इसके बीजों में 3–6 प्रतिशत तक तेल होता है। तेल निकालने के बाद बची खली बाजार में पशुओं हेतु अच्छा आहार है। बबूल बीज का तेल साबुन बनाने में भी उपयोगी होता है।

(4) चूरा तेल : चूरा को फलवारा भी कहते हैं तथा वैज्ञानिक भाषा में इसे मधुका ब्यूटिरेशिया या मधुका जाति कहा जाता है। महुआ या मधुका के वृक्ष उत्तर प्रदेश, म.प्र., बिहार तथा राजस्थान के उदयपुर, बांसवाड़ा प्रभागों में बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं। चूरा के एक वृक्ष से औसतन 50 किलोग्राम से एक क्विंटल तक तेल बीज प्राप्त हो सकते हैं। इसमें तेल की मात्रा लगभग 50 प्रतिशत तक होती है। इसमें संतृप्त वसा अम्लों में पामिटिक 65 प्रतिशत तक होता है। इसके अलावा अल्प मात्रा में मिरिस्टिक और स्टिएरिक अम्ल होते हैं। इसमें पाए जाने वाला पामिटिक अम्ल औषधीय महत्व का है। इसका उपयोग विटामिन 'ए' और क्लोरमफेनिकोल के पामिटेट बनाने में होता है। इस पामिटेट के बन जाने से इन औषधियों की आयु बढ़ जाती है।

महुआ (चूरा) के बीजावरण से 2.4 प्रतिशत एक प्रति–ऑक्सीकारक का मिश्रण प्राप्त होता है जिसमें क्वर्सिटिन और टैक्सीफोलीन होता है। कृत्रिम प्रति–ऑक्सीकारक के रूप में इसका प्रयोग हो सकता है। इसकी गिरी से 10–15 प्रतिशत सैपोनिन मिलता है जो आर्द्रक के रूप में फोटोफिल्म उद्योग में उपयोगी रसायन आयातित सैपोनिन (क्विलजा वृक्ष की छाल से निकाला जाने वाला रसायन) के समान गुणों वाला है। महुआ का आयोडीन मान 55–70 प्रतिशत होने के कारण यह साबुन बनाने में उपयोगी है। इससे मुख्यतः उच्च कोटि के टायलट सोप का निर्माण किया जाता है। मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा व उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचलों में आदिवासी महुआ तेल का प्रयोग खाना पकाने में करते हैं। महुआ तेल का प्रयोग वनस्पति, लिनोलियम और ग्रीज उत्पादन में होता है। महुआ तेल की वसा में मोनोसैचुरेटेड ग्लिसराइड होने के कारण इसका प्रयोग कोकोआ बटर की जगह हो सकता है। महुआ खली में 40–55 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 14–18 प्रतिशत प्रोटीन एवं 6–7 प्रतिशत राख होने के कारण यह मात्र खाद के रूप में उपयोगी है तथा मुख्यतः गन्ने के खेतों में प्रयुक्त होता है। खली को शुद्ध कर इसे पशु–आहार व मुर्गीदाने में प्रयुक्त किया जा सकता है।

(5) पीसा तेल : यह ऐक्टिनोडैफ्ने हुकराई नामक वानस्पतिक पौधे से प्राप्त किया जा सकता है। यह मुख्यतः पूर्वी एवं पश्चिमी घाट व सिक्किम के निचले भागों में मुख्यतः पाया जाता है। इसमें करीब 30 प्रतिशत तेल मिलता है। इसमें 96 प्रतिशत लोरिक तथा 4 प्रतिशत ओलिक अम्ल होता है। लोरिक अम्ल व बैटेनिल एल्कोहॉल से डिटर्जेन्ट, शैंपू, वस्त्र आदि बनाए जाते हैं तथा इसमें लोरिक अम्ल की प्रचुर मात्रा होने से बड़े पैमाने पर आयात किए जाने वाले विदेशी लोरिक अम्ल की जगह इस स्वदेशी रसायन का प्रयोग कर विदेशी मुद्रा बचाई जा सकती है।

(6) आम तेल : आम का वैज्ञानिक नाम मैंगीफेरा इंडिका है। यह प्रायः सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। आम की गुठली से आम की वसा का उत्पादन काफी मात्रा में हो सकता है जोकि खाने–योग्य होता है। इसका रंग बर्फ के समान सफेद तथा स्पर्श नर्म होता है। यह खाना बनाने में उपयोग किया जा सकता है। इसमें स्टिएरिक अम्ल भी काफी मात्रा में पाया जाता है जो पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आम की गुठली से आयोडीन मान 30–60 प्रतिशत एवं स्टिएरिक अम्ल

30–45 प्रतिशत तक होता है। इसकी वसा में ग्लिसराइड 30–45 प्रतिशत तक होता है जिससे यह कोकोआ बटर की तरह उपयोगी है। इसकी वसा से वनस्पति घी बनाया जाता है तथा इसे साबुन उत्पादन में भी प्रयुक्त किया जाता है।

(7) उंडी तेल : इसे वानस्पतिक भाषा में फैलोफिलम इनोफिलम कहते हैं। इसे नागचंपा, पन्नग या एलेकजेन्ड्रियन लारेल के नाम से भी जाना जाता है। यह दक्षिण भारत के तटीय क्षेत्रों व अंडमान द्वीप में बहुतायत में पाया जाता है तथा शोभा के लिए भी लगाया जाता है। इसकी गिरी से 50–70 प्रतिशत तक हरे रंग का तेल मिलता है जो लारेल नट, पिन्नेय, पूनबीज, डिल्ली तेल जैसे अनेक नामों से जाना जाता है। इसका तेल साबुन बनाने के लिए उत्तम है। यह जलाने के काम भी आता है। गठिया व त्वचा रोग में भी इसका उपयोग होता है। नागचंपा या उंडी का एक रेचक कैलोफिलोइड टाइफाइड के बैक्टीरिया (माइक्रोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस) के विरुद्ध सक्रिय तथा सशक्त रक्त–प्रतिस्कंदक पाया गया है। उंडी में तेल की मात्रा 50 प्रतिशत, पामिटिक अम्ल 19 प्रतिशत, स्टिएरिक अम्ल 8 प्रतिशत, ओलिक अम्ल 47 प्रतिशत, लिनोलिक अम्ल 22 प्रतिशत तथा पामिटोलिक अम्ल 6 प्रतिशत के लगभग पाए जाते हैं।

(8) कुसुम तेल : यह श्लाइकेरा ओलिओसा पादप से मिलता है। करीब 30–40 प्रतिशत तेल इसके बीजों से तथा 50–60 प्रतिशत तक इसके फूलों की अष्टियों से प्राप्त किया जा सकता है। कुसुम तेल में ग्लिसरीन मात्र 4 प्रतिशत के लगभग होता है जबकि अन्य सामान्य तेलों में यह 10 प्रतिशत के लगभग मिलता है। इसका तेल साबुन उत्पादन में प्रयुक्त होता है तथा अधिक सफाई की गुणता वाला होता है। इसका तेल आदिवासियों द्वारा केश तेल (बालों का तेल) के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसे शारीरिक दर्द में भी प्रयोग में लाया जाता है। कुसुम बीज की खली स्वाद में कड़वी होती है एवं खाद के रूप में प्रयुक्त होती है। इसमें नाइट्रोजन 0.3 प्रतिशत से 60 प्रतिशत तक होने पर इसे भेड़ों को खिलाने में प्रयोग में लाया जाता है जबकि 35 प्रतिशत तक नाइट्रोजन होने पर संकर ब्रीड के बछड़ों को एवं 17 प्रतिशत तक होने पर मुर्गों के लिए इसे पशु–आहार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

(9) इरूल तेल : यह जाइलिया जाइलोकार्पा नाम के पौधे से प्राप्त होता है। इरूल के वृक्ष आंध्र प्रदेश के तेलगांना क्षेत्र में पाए जाते हैं। उत्तर प्रदेश में भी इसकी उपलब्धता है। इरूल के बीजों में तेल की मात्रा 18 प्रतिशत तक होती है। इसमें पामिटिक अम्ल 3.3 प्रतिशत, स्टिएरिक अम्ल 2.2 प्रतिशत, ओलकि अम्ल 21.5 प्रतिशत तथा लिनोलिक अम्ल 34.8 प्रतिशत तक मिलता है। इसके अतिरिक्त इसमें बिहेनिक अम्ल 21.3 प्रतिशत, लिग्नोसेरिक अम्ल 10.3 प्रतिशत तथा कई अन्य अम्ल पाए जाते हैं।

(10) गुटेल तेल : इसे ट्रिविया न्यूडीफ्लोरा पौधे से प्राप्त किया जा सकता है। गुटेल, गंटेल या पिंडारा नामक इस पौधे के बीजों से 18 प्रतिशत तेल प्राप्त हो सकता है। इसमें इलियोस्टिऐरिक अम्ल 38 प्रतिशत तक होता है जिसे एपॉक्सी व पॉलियूरिथेन यौनिकों के निर्माण में प्रयुक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें ओलिक अम्ल 21 प्रतिशत, लिनोलिक अम्ल 19 प्रतिशत, पामिटिक अम्ल 12 प्रतिशत, स्टिएरिक अम्ल 8 प्रतिशत तथा अन्य अम्ल पाए जाते हैं।

(11) साल तेल : इसे शोरिया रोबेस्टा नामक पौधे से प्राप्त करते हैं। मध्य प्रदेश में साल के घने वन मिलते हैं। साल वसा का प्रयोग कोकोआ मक्खन की जगह होता है। इसके बीज तेल में आयोडीन मान 30–45 प्रतिशत एवं ओलिक एसिड 37–46 प्रतिशत है जो कोकोआ मक्खन के समान है। इसे साबुन उद्योग के अतिरिक्त शुद्धिकरण के पश्चात् मिठाई एवं डबल रोटी उद्योग में प्रयुक्त किया जा सकता है। साल सीडटेनिन का प्रयोग चमड़े की टैनिंग में होता है। साल मील का प्रयोग यूरिया, फार्मेल्डिहाइड रेजिन (जोकि प्लाईवुड को चिपकाने में काम आता है) के उत्प्रेरक के रूप में किया जा सकता है। साल तेल का निर्यात कर बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।

इनके अतिरिक्त सहजन (मोरिंगा ओलीफेरा) व

जंगल जलेबी (पिथकोलोबियम डल्स) के बीजों से क्रमशः 27 तथा 15 प्रतिशत तक तेल प्राप्त हो सकता है। सहजन में ओलिक अम्ल 74 प्रतिशत तथा लोरिक अम्ल 12.5 प्रतिशत व पामिटिक अम्ल 9.6 प्रतिशत मिलता है। इसे खाद्य तेल के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार जंगल जलेबी में पर्याप्त मात्रा में लेसीथिन मिलता है तथा करीब 52 प्रतिशत ओलिक अम्ल एवं कई अन्य मिलते हैं। इसी प्रकार नीम तेल (ऐजाडिरेक्टा इंडिका) का प्रयोग औषधि–निर्माण में होता है। नीम के बीजों का उपयोग कृषि में भी होता है व इसके दो सक्रिय यौगिक मिलियान्ट्रायोल व अजाडिरेक्टीन विशेष उपयोगी हैं। इसी प्रकार कोकम (गार्सिनिया इंडिका) नागेसर (मेसुआ फेरिया) आदि गैर–परंपरागत तैलीय बीजों से विभिन्न रूपों में उपयोगी अखाद्य तेल प्राप्त किया जा सकता है।

आज आवश्यकता है कि हम इन गैर–परंपरागत पौधों का उपयोग कर न केवल मांग एवं आपूर्ति का संतुलन बनाएं वरन् निर्यात कर विदेशी मुद्रा भी अर्जित कर सकें। निश्चित रूप से ये गैर–परंपरागत अखाद्य तेल बीज आर्थिक समृद्धि में सहायक हैं।

❁ ❁ ❁

कैमरा नहीं अब कपड़े तस्वीरों में कैद करेंगे यादगार लम्हें

वह दिन दूर नहीं जब लोग ज़िंदगी के यादगार लम्हों को तस्वीर में कैद करने के लिए अपनी ड्रेस का सहारा लेंगे। मेसाच्युसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के वैज्ञानिक एक ऐसा स्मार्ट कपड़ा बनाने में कामयाब रहे हैं, जो इंसान के आस–पास घट रही विभिन्न घटनाओं को फोटो में जकड़ सकेगा। शोधकर्ताओं के अनुसार इस कपड़े के प्रत्येक धागे के बीच अत्याधुनिक सेंसर लगाए गए हैं। इसके चलते यह धारक के शरीर पर पड़ रहे प्रकाश की दिशा और तरंगदैर्घ्य परखने में सक्षम है।

प्रमुख शोधकर्ता डॉक्टर योल फिंक के अनुसार स्मार्ट कपड़े में मौजूद सेंसर प्रकाश के संपर्क में आते ही सक्रिय हो जाते हैं। वे कपड़े से निकलने वाली विद्युतीय तरंगों के मध्य सामंजस्य बैठाने की प्रक्रिया शुरू कर देते हैं। उन्होंने बताया कि निर्माण के दौरान कपड़े को इस कदर खींचा गया कि प्रत्येक धागे (25 मिमि. चौड़ाई) के बीच एक सेंसर लगाया जा सके। फिंक ने कहा कि खुशियां बिन बताए ही हमारे जीवन में दस्तक दे देती हैं। ऐसे में हंसते–खेलते पलों को तस्वीर में संजोने के लिए कैमरे की जरूरत पड़ती है। उन्होंने कहा कि एक माँ के लिए अपने शिशु को पहली बार चलता देखना हमेशा खास होता है। वह बच्चे के बढ़ते कदमों को तस्वीर में कैद करना चाहती है। हालांकि कैमरा लाने में देरी के चलते अक्सर उसके अरमान धरे के धरे रह जाते हैं। स्मार्ट फ़ैब्रिक से दिल में दबी कुछ ऐसी ही अधूरी इच्छाएं पूरी की जा सकेंगी।

दीपक कोहली

8

बोनसाई पौधे : एक परिचय

आर. एस. सेंगर* एवं
रेशू चौधरी*

बोनसाई, बागवानी और कला दोनों का मिश्रण है, इसमें आपकी कलाकारी झलकती है। आप अपने बरामदे में पीपल या बरगद का पेड़ लगाने की कल्पना भी नहीं कर सकते पर इनका बोनसाई बनाकर बैठक में सजा सकते हैं। यदि खेती के साथ–साथ अन्य कोई कार्य किया जाए तो हमारे किसान भाइयों की आर्थिक स्थिति मजबूत हो सकती है जैसे पौधों की नर्सरी बनाकर पौधे बेचना, फूलों से गुलदस्ते के अलावा बोनसाई आदि बनाकर बेचना। यदि किसान भाई बोनसाई बनाकर बेचें तो उससे अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। बोनसाई बनाना बहुत ही आसान होता है तथा यह एक ऐसी कला है जिसे वृक्षों से प्रेम रखने वाला व्यक्ति अच्छी प्रकार से जानते हैं। इसको बनाने के लिए पौधे को हमेशा काट छांटकर तथा उसको किसी सहारे से बांधकर उचित आकार में रखा जाता है जिससे यह पौधा पूर्ण परिपक्व दिखाई देता है। बोनसाई मूलतः पेड़ों व झाड़ियों को आनुपातिक छोटे पात्रों में रखने और उन पौधों की अधिक उम्र दर्शाने के लिए बौना करने की तकनीकों से उनका उपचार करने की प्रक्रिया है। बोनसाई बनाने की प्रक्रिया समझने के बाद इसे बनाना कठिन नहीं है। बोनसाई हमेशा तिकोने आकार से बनता है। पौधे का फैलाव नीचे की ओर अधिक होता है ऊपर जाते जाते यह नुकीला हो जाता है। बोनसाई बनाने के लिए पीपल या बरगद का छोटा पौधा लें। इनके अलावा फाइकस किस्म के पौधे आदि, फूल वाले पौधे जैसे गुड़हल, बोगेनबेलिया, मधुकामिनी, हेज में काम वाले ड्यूरांटा किस्म के बोनसाई अच्छे बनते हैं।

3. **फल वाले पौधे** : आम, जामुन, लीची, चीनी अमरूद, नारंगी, चीकू, आंवला आदि।

बोनसाई हेतु गमलों का चयनः– बोनसाई बनाने के लिए विभिन्न आकार के गमलों/बर्तनों को उपयोग में लाया जाता है जैसे तिकोने, अंडाकार, गोल, चौकोर वर्गाकार, लंबे वर्गाकार आदि। इन सभी गमलों की गहराई भिन्न–भिन्न होती है तथा ये देखने में सुंदर लगते हैं। इन गमलों/बर्तनों से पानी के निकास हेतु इनकी पेंदी में दो या तीन छिद्र अवश्य हों।

बोनसाई हेतु मिट्टी : मिट्टी ऐसा माध्यम है जिसमें पौधा उगता है एवं उस पौधे का पूर्ण स्वास्थ्य उस मिट्टी की उर्वरता पर निर्भर करता है। बोनसाई उत्पादक को मिट्टी तैयार करने के बारे में बुनियादी बातों को समझना बहुत जरूरी है। बोनसाई के लिए मिट्टी भुरभुरी होनी चाहिए ताकि पानी आसानी से बाहर निकल सके। साथ ही इसमें कुछ पानी बनाए रखना चाहिए ताकि दिन में पौधा सूखे नहीं। यदि मिट्टी के कणों के बीच अधिक पानी कायम रहता है तो इससे बारीक जड़ें सड़ जाएंगी। बर्तनों में मिट्टी भरने के लिए लाल मिट्टी, गोबर की सड़ी खाद, रेत व पत्ती की सड़ी खाद को बराबर–बराबर मात्रा में मिलाकर भरना उपयुक्त रहता है।

प्रवर्धन : बोनसाई के लिए पौधे मुख्यतः वानस्पतिक प्रवर्धन विधि द्वारा ही तैयार करना उचित होता है। यदि बीज द्वारा पौधे तैयार किए जाएंगे तो पौधों को बढ़ने एवं परिपक्व होने में अधिक समय लगेगा। परंतु ऐसे पौधे जो वानस्पतिक प्रवर्धन विधि द्वारा तैयार नहीं किए जाते उन पौधों को बीजों से तैयार करके बोनसाई के लिए उपयोग किया जाता है।

रोपाई का समय : मैदानी क्षेत्रों में पौधों की ज्यादातर किस्में जुलाई–अगस्त के माह में बोनसाई हेतु रोपी जाती हैं। परंतु ऐसे पौधे जो पतझड़ वाले होते हैं उनकी रोपाई फरवरी–मार्च में करना उचित रहता है।

रोपाई की विधि : सर्वप्रथम बोनसाई पात्र के नीचे बने छिद्रों को भली–भांति साफ कर लिया जाता है। अब इन छिद्रों के ऊपर ईंट आदि के टुकड़े रख दिए जाते हैं जिससे निकास की समस्या उत्पन्न न हो। अब पौधे के सामने का हिस्सा अपनी तरफ रखें जहाँ से तना साफ नजर आता हो और उसे काटती हुई मुख्य शाखाएं न हों मुख्य शाखा से निकली हुई शाखाएं यदि दूसरी मुख्य शाखा को काटती हों तो उन्हें हटा दें। ध्यान रहे, नीचे की दो पंक्तियां छोड़कर काटें ताकि जगह खाली न दिखे। मुख्य तने को कभी बीच में न काटें। इसकी लंबाई सबसे अधिक होनी चाहिए। यदि पौधा बड़ा है तो एकदम से छोटा न करें।

बोनसाई हेतु पौधों का चयन : बोनसाई बनाने के लिए ऐसे पौधों का चयन करना उत्तम रहता है जिनमें सामान्यतः छोटे–छोटे फल–फूल आते हों तथा पतझड़ कम से कम हों। अधिक पतझड़ वाले पौधे पत्तियां गिरा देते हैं जिससे पौधे की खूबसूरती कम हो जाती है। इसके अलावा निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

- चयनित पौधे का जीवनकाल अधिक लंबा हो।
- वह आकार एवं प्रकार में सुंदर तथा बड़ा वृक्ष बनने वाला हो।
- वह जैविक रूप से कठोर परिस्थितियां सहन करने की शक्ति रखता हो।
- उसकी पत्तियां व फूल–फल देखने में सुंदर व आकर्षक हों।

बोनसाई हेतु पौधे के प्रकार

1. **पत्तियों वाले पौध** : पीपल, बरगद, पाकड़, चीड़, रबर, बैन्जामीना, पुतरंजीवा आदि।
2. **फूल वाले पौधे** : अमलतास, गुलमोहर, केशिया, अडूसा, चम्पा, बोगनविलिया आदि।

इन टुकड़ों के ऊपर एक से दो इंच मोटी रेत की तह लगा दी जाती है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पात्र पूर्णतः नहीं भरा जाए, उसमें कुछ जगह खाली छोड़ दी जाए। पौधा लगने के उपरांत उस बर्तन/गमले को पूर्णतः मिट्टी से भरकर मिट्टी को अच्छी प्रकार से पौधे के पास दबा दिया जाता है जिससे पौधे इधर–उधर न गिरें एवं पौधे की जड़ें ठीक प्रकार से गमले की मिट्टी से ढक जाएं।

सिंचाई की आवश्यकता : रोपाई के तुरंत बाद पौधे की सिंचाई करना नितांत आवश्यक होता है। गर्मी के दिनों में सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है जबकि सर्दियों में इसकी आवश्यकता कम रहती है। अतः आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए।

तारबंदी किस किस्म की

शाखाओं को सही आकार देने के लिए तारबंदी की जरूरत पड़ती है। इसके लिए तांबे या एल्युमिनियम के तार का इस्तेमाल करें। लोहे के तार में जंग लग जाता है जिससे पौधे की शोभा बिगड़ जाती है। शाखा को यदि नीचे की ओर अधिक झुकाना है तो पास–पास तार लपेटें। मोटी शाखा के लिए मोटा तार लें। मोटी शाखा और उससे निकलती दो शाखाओं को लपेटने के लिए दोहरा तार लें। आगे जाकर दोनों तारों को एकाएक शाखा पर लपेट दें, फिर शाखाओं पर हलका दबाव देकर मोड़ दें। तार कभी लंबे समय तक न बांधें। दो महीने से अधिक बांधने की जरूरत हो तो तार खोलकर दोबारा बांधें या रस्सी का प्रयोग करें। एक गमले में एक ही बोनसाई लगाएं तो अच्छा है। फिलर के तौर पर छोटी घास लगा सकते हैं। पुष्प विन्यास (फ्लावर अरेंजमेंट) की तरह कुछ पौधों को एक साथ लगाया जा सकता है पर यह बोनसाई में नहीं आता। एक बार बोनसाई लग जाने के बाद नियमित देखभाल से यह हराभरा हो जाता है। आकार सही रखने के लिए इसकी हमेशा काट–छांट करनी पड़ती है।

पेड़ नहीं तो बोनसाई ही सही

बोनसाई बनाने में ऐसा पौधा लेना चाहिए जिसमें तना व शाखाएं स्पष्ट रूप से निकल चुकी हों। यानी पौधा कम से कम एक साल को हो। पौधा लचीला और

छोटी पत्तियों वाला हो। इसका जीवन काल कम से कम 20–25 साल होना चाहिए। 2–3 साल के जीवनकाल वाला पौधा बोनसाई बनाते–बनाते ही खत्म हो जाता है। बोनसाई झुके हुए, सीधे, अनियमित सीधे, हवा से एक तरफ मुड़े हुए, झरने की तरह नीचे गिरते हुए हो सकते हैं। पत्थर में उगे बोनसाई बहुत अच्छे लगते हैं इसके कई पौध समूह यानी 'बोनसाई कारेस्ट' भी लगाया जा सकता है। अतिरिक्त पौधे लगाकर इकेबाना बनाते हैं। इसे जापानी बहुत पसंद करते हैं।

बोनसाई की कितनी हो ऊँचाई

बोनसाई की अधिकतम ऊंचाई 3 इंच से 8 फुट तक हो सकती है। कम ऊंचाई के पौधे ज्यादा आकर्षित करते हैं। जापान में 800 साल पुराना बोनसाई है। दरअसल उसकी उम्र पौधे की किस्म और देखभाल पर निर्भर करती है। वहाँ इसे पारिवारिक विरासत के रूप में लिया जाता है। एक बोनसाई को 4–5 पीढ़ियां संवारती हैं लेकिन यह जानकर आश्चर्य होगा कि बोनसाई की शुरूआत जापान ने नहीं चीन ने की थी। जापान ने इसे विकसित किया है। जापान के अलावा इंडोनेशिया, मलेशिया आदि देशों में भी यह काफी लोकप्रिय है।

बोनसाई बनाने की निम्नलिखित पद्धतियां होती हैं :

नियमित सीधी पद्धति : इस पद्धति में वृक्ष सीधी दिशा में बढ़ता है जहां सिरे और जड़ें एक उर्ध्वाकार रेखा में रहती हैं। इस पद्धति की अन्य शाखाएँ एक पिरामिड या गोल आकार में ढाली जाती हैं।

अनियमित सीधी पद्धति : नियमित सीधी पद्धति की भांति ही वृक्ष ऊपर की ओर बढ़ता है। लेकिन तने में कई सुसंतुलित घुमाव होते हैं। घुमाव आधार के अधिक नजदीक और पेड़ के सिरे की ओर कम होते हैं। शाखाओं की स्थिति का विन्यास नियमित सीधी पद्धति की भांति ही किया जाता है।

तिरछी पद्धति : इस पद्धति में वृक्ष का तना जड़ के दाएं या बाएं 40 अंश के कोण पर बढ़ता है। जड़ें झुकाव की ओर अधिक फैलती हैं जिससे पेड़ अधिक संतुलित दिखाई पड़ता है तथा सीधा अथवा टेढ़ा हो सकता है।

जुड़वा तना पद्धति : इस पद्धति में एक पौधे की जड़ से दूसरा तना निकल जाता है जिसको जुड़वा तना पद्धति कहते हैं तथा जुड़वा तना वृक्ष को एक नियमित और तिरछी पद्धतियों के बोनसाइयों में ढाला जा सकता है।

बहुतना पद्धति : जब एक जड़ पुंज से निकले दो या दो ये अधिक तने हों, तो उसे बहुतना पद्धति कहते हैं। सभी तने विभिन्न बिंदुओं से उगते हैं और उनकी मोटाई विषम होती है।

झुकी पद्धति : इस पद्धति में अनेक शाखाओं वाला कम आयु का पौधा चुना जाता है। एक तरफ की शाखाओं को काट लिया जाता है या तार से दूसरी ओर बांध दिया जाता है। तने के बिना शाखाओं के क्षेत्र को गहराई से छीला जाता है। तैयार किए गए इस पेड़ को एक गहरे त्रिकोणाकार पात्र में लगाया जाता है। भीतर से जड़ों से लेकर तने के सिरे तक तांबे का तार बांधा जाता है ताकि वृक्ष मजूबती से खड़ा रहे। निकलने के बाद मुख्य जड़–पुंज को काटकर कम किया जाता है और एक छिछले लंबे पात्र में वृक्षों को रखा जाता है।

वन या समूह रोपण पद्धति : इस पद्धति में एक ही प्रकार के दो या दो से अधिक वृक्षों को एक छिछले पात्र में साथ समूहबद्ध किया जाता है। ताकि वे वन जैसा दिखाई दें। इस पद्धति में एक से लेकर 15 तक पौधे लगाए जा सकते हैं।

झाड़ूनुमा पद्धति : इस पद्धति में किसी वृक्ष को ढालने के लिए एक पंखे के आकार में सभी शाखाओं को तार से बांध दिया जाता है। कोई भी शाखा एक दूसरे से आर–पार नहीं होनी चाहिए।

बोनसाई का आकार एवं वृद्धि

लघु बोनसाई – 15 सेमी से कम
छोटी बोनसाई – 15 सेमी से 30 सेमी तक
मध्यम बोनसाई – 30 सेमी से 60 सेमी तक
बड़ी बोनसाई – 60 सेमी से ऊपर

बोनसाई बनाने के लिए उसके आकार का निर्धारण, प्रकृति में उसी प्रकार के वृक्ष के आकार द्वारा किया जाना चाहिए। आकार देने के लिए काट–छांट एवं एल्युमिनियम के तार से शाखाओं को बांधना आवश्यक होता है।

पानी देने की तकनीक

बोनसाई के पौधों में मिट्टी में सोखने लायक पानी एक बार रोज डालें। गर्मी के मौसम में 2–3 बार डालें यदि मिट्टी बह जाती हो तो सूखी काई डालें। बरसात के मौसम में दीवारों पर उगने वाली काई (ग्रीन मोस) मिल जाए तो और भी अच्छा है यह बहुत सुंदर दिखती है।

पुनः रोपण

जब पौधे की अच्छी देखभाल की जाती है और वे स्वस्थ रहते हैं तब अनेक नई जड़ें निकलती हैं तथा कुछ समय में ये जड़ें पात्र को इतना घेर लेती हैं कि मिट्टी में हवा व पानी जाना बंद हो जाता है। ये जड़ें मिट्टी का बहुत सारा पोषक तत्व खा जाती हैं जिससे पौधा अस्वस्थ दिखाई देने लगता है। ऐसे समय में जड़ों एवं शाखाओं की कटाई–छंटाई करके पौधों को पुनः रोप दिया जाता है। इस कार्य के लिए जुलाई–अगस्त एवं फरवरी मार्च का समय उपयुक्त माना जाता है।

खाद एवं उर्वरक

बोनसाई में सामान्य रूप से कार्बनिक खादों का ही अधिक उपयोग किया जाता है जिसमें मुख्य है– गोबर की सड़ी खाद, नीम की खली, अरंडी की खली, पत्ती की सड़ी खाद आदि। नाइट्रोजन युक्त खादों का प्रयोग नहीं के बराबर होता है। वर्ष में दो या तीन बार पौधे की उम्र के अनुसार नीम की खली या हड्डी का चूरा डाला जा सकता है।

कीट एवं रोग नियंत्रण

यदि बोनसाई पर रोगों या कीटों का हमला हो और ठीक से उपचार न किया जाए तो इससे कुछ महत्वपूर्ण शाखाओं को नुकसान पहुंच सकता है जिससे आपकी बोनसाई खराब हो सकती है। इसके लिए समय–समय पर कीट एवं रोगों पर नियंत्रण करना आवश्यक है। अतः कीटों की रोकथाम के लिए 0.02 प्रतिशत मोनोक्रॉटोफॉस एवं फफूंदी की रोकथाम के लिए मोनोक्रॉटोफॉस या कार्बडाजिम की 0.02 प्रतिशत का छिड़काव पौधों पर करने से कीट एवं रोगों से पौधों को बचाया जा सकता है।

अतः किसान भाईयों यदि उपर्युक्त विधि अनुसार अपने घर या खेत पर बोनसाई बनाकर बेचेंगे तो उन्हें उसके अच्छे दाम मिलेंगे। बोनसाई की कीमत उसकी आयु से तय की जाती है जैसे 5 वर्ष पुरानी बोनसाई की कीमत लगभग 800 से 1,000 रुपये होती है।

कटिंग कब करें

प्रायः देखा गया है कि मानसून और वसंत में पौधे ज्यादा बढ़ते हैं। उस समय कटिंग जरूरी है। यों तो साल भर थोड़ी–थोड़ी कटिंग करते रहें। इससे पौधे अच्छी तरह विकसित होते हैं। कुछ लोगों में यह भ्रांति है कि बोनसाई बनाना बुरी चीज़ है क्योंकि पौधों को बार–बार काटा जाता है। हेज की कटाई भी करते हैं, जब वह बुरा नहीं है तो बोनसाई कैसे बुरा है? बल्कि यह तो अच्छी कोशिश है कि जहां पेड़ का विकल्प नहीं ला सकते वहां बोनसाई एक अच्छा विकल्प है जिससे घर आंगन की रौनक तो बढ़ेगी ही, साथ ही घर के लोगों को ऑक्सीजन भी काफी मात्रा में मिलती रहेगी।

विभिन्न प्रकार के बोनसाई पौधे

❂ ❂ ❂

9

सिरदर्द : गंभीर रोगों का सूचक

डॉ. जे.एल. अग्रवाल*

सिरदर्द मानव में सबसे सामान्य रोग है, यदा–कदा तो सिर–दर्द सभी व्यक्तियों को हो सकता है, यह अनेक कारणों से हो सकता है, पर कुछ व्यक्तियों को रोजाना सिरदर्द होता है, जिसके कारण उनकी कार्यक्षमता प्रभावित होती है, व्यक्तित्व, व्यवहार में बदलाव आ जाता है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, जिसके कारण पारिवारिक अशांति हो सकती है। आमतौर पर ऐसे मरीज जिनको लगभग रोजाना सिरदर्द होता है वे मनमर्जी से दर्दनिवारक दवाओं का सेवन करते हैं, जिसके दुष्प्रभाव हो सकते हैं। रोजाना सिरदर्द अनेक कारणों से हो सकता है। अतः सिरदर्द होने पर नजरअंदाज नहीं करना चाहिए तथा न दर्दनिवारक दवाओं का सेवन ही इसका समाधान है।

रोजाना सिरदर्द के प्रमुख कारण

रोजाना सिरदर्द सदैव सामान्य समस्या नहीं होती, कभी–कभी यह गंभीर रोगों का कारण हो सकता है, जबकि ज्यादातर व्यक्तियों में रोग के कारण का पता नहीं हो पाता। सिरदर्द अनेक स्वरूप में हो सकता है।

माइग्रेन : साधारणतः माइग्रेन के कारण सिरदर्द (अधशीशी) हमले के रूप में विभिन्न अंतराल पर होता है। पर कुछ मरीजों में माइग्रेन पुराना होने पर प्रतिदिन होता है। रोज़ाना सिरदर्द प्राय दिन में 4 घंटे से ज्यादा देर तक रहता है। इनमें माइग्रेन के अन्य लक्षण–मितली, आंखों के सामने चकाचौंध महसूस होना इत्यादि भी हो सकते हैं। रोजाना माइग्रेन सिरदर्द पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में ज्यादा होता है। यदि माइग्रेन ग्रस्त मरीज मोटे हैं, दर्द निवारक दवाओं का ज्यादा सेवन करते हैं, तनाव रहता है, तो दर्द रोजाना हो सकता है।

• **दीर्घकालीन तनाव जनित सिरदर्द** : तनाव जनित सिरदर्द, रोजाना सिरदर्द का सबसे सामान्य कारण होता है। विपरीत परिस्थितियों में मानसिक तनाव से माथे की माँसपेशियों में संकुचन होने से तनाव जनित सिरदर्द हो सकता है।

• **हेमी क्रेनिया कन्टूनिया (Hemierania Continua)** : आधे सिर में दर्द होता है जो धीरे–धीरे बढ़ता है, दर्द के दौरान नाक बहती है, आँखों से आंसू निकलने लगते हैं। इसका उपचार इन्डोमाइसिन द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

• **(गुच्छ–शिरोवेदना) क्लस्टर सिरदर्द (Cluster Headache)** : इन मरीजों को सिर के आधे–आधे हिस्से में दर्द होता है। नाक बहने, आँसू निकलने, साथ ही सिरदर्द की तरह चेहरे में अन्य लक्षण जैसे मुँह टेढ़ा होना इत्यादि हैं। मदिरापायी व्यक्तियों, दिखाई पड़ते शराबियों में सुबह–सुबह इस प्रकार का सिरदर्द हो सकता है।

• कुछ व्यक्तियों में मेहनत करने के बाद, यौन क्रीड़ा के बाद या खांसी आने के कारण भी सिरदर्द हो सकता है।

• जो व्यक्ति किसी दवा का लंबे समय तक सेवन करते हैं, अथवा सिरदर्द की दवा का सेवन करते हैं उन्हें दवा का प्रभाव खत्म होने के बाद पुनः तेज सिरदर्द शुरू हो सकता है। कुछ दवाओं में जैसे सोने की दवाओं, कैफीन युक्त दवाओं के सेवन से भी सिरदर्द हो सकता है।

• तनाव, अवसाद का सिरदर्द से गहरा रिश्ता है, इसके कारण भी रोजाना सिरदर्द हो सकता है। रोजाना सिरदर्द होने पर तनाव व अवसाद (डिप्रेशन) होना स्वाभाविक है जिसके कारण समस्या दुष्कर हो जाती है, इन मरीजों का उपचार मुश्किल हो जाता है।

• शराब, सिगरेट, तंबाकू या अन्य नशीली दवाओं के आदी व्यसनी व्यक्तियों में भी रोजाना सिरदर्द हो सकता है।

• पर्याप्त नींद न आने, नींद में बार–बार रुकावट पड़ने, रात को श्वास रुकने के कारण खर्राटे आने, नींद खुलने (स्लीप एपनिया) के कारण भी रोजाना सिरदर्द हो सकता है।

• गर्दन की माँस पेशियों में जकड़न, गर्दन व रीढ़ की हड्डियों के रोगों (सरवाइकल स्पांडलाइटिस) के कारण भी रोजाना सिरदर्द हो सकता है। आधुनिक निष्क्रिय जीवन, गलत बैठने, कार्य करने, कंप्यूटर पर लंबे समय तक कार्य करने के कारण इन रोगों का प्रकोप तेजी से बढ़ रहा है जिसके कारण सिरदर्द होता है।

• कभी–कभी रोजाना सिरदर्द मस्तिष्क के गंभीर रोगों–रक्त वाहिनियों के रोग, टूयमर (अर्बुद), कैंसर, संक्रमण, उच्च रक्तचाप, मस्तिक में या मस्तिष्क की झिल्लियों में रक्त स्राव होने के कारण भी हो सकता है। प्रायः इन मरीजों में दर्द धीरे–धीरे बढ़ता है, साथ ही इनमें स्नायु क्षतिग्रस्त होने के कारण अन्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

रोजाना सिरदर्द का निदान

रोजाना सिरदर्द अनेक कारणों से हो सकता है। प्रायः सिरदर्द के कारण का पता नहीं लग पाता है और यह मानसिक तनाव, पारिवारिक, वातावरण, जीवन शैली, आदतों, परिस्थितियों इत्यादि में अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप होता है। पर कभी–कभी यह विभिन्न रोगों के कारण हो सकता है, अतः इन मरीजों को लापरवाही नहीं करनी चाहिए, चिकित्सक से परामर्श लेकर व परीक्षण और जरूरी जाँच करवाकर मूल कारण का पता लगाने का प्रयास करना चाहिए। यदि दर्द की तीव्रता बढ़ रही है, साथ में हाथों में झुनझुनाहट, कमजोरी, असंतुलन इत्यादि जैसे अन्य लक्षण हैं अथवा सिरदर्द 6 माह से ज्यादा समय तक रोजाना होता हो तो लापरवाही न करें और चिकित्सक से परामर्श तुरंत ले।

समाधान

अक्सर रोजाना सिरदर्द तनाव के कारण होता है। कुछ परिस्थितियों में जैसे अत्यधिक थकान, चुंधियाती रोशनी, शोर इत्यादि से सिरदर्द होता है तो यथा संभव इनसे बचें। यदि दवाओं, शराब, सिगरेट, तंबाकू का ज्यादा सेवन करते हैं तो इनका परित्याग करें। यह न केवल सिरदर्द उत्पन्न करते हैं प्रत्युत इनका सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद होता है। इनका परित्याग करते समय यदि असहनीय दर्द होता है तो कुछ दिन दर्द निवारक दवाओं का सेवन किया जा सकता है।

• सिरदर्द होने पर लगातार दो दिन से ज़्यादा दर्द निवारक दवाओं का सेवन न करें। यदि सिरदर्द रहता है तो चिकित्सक से सलाह लें तथा उसके कारण का पता लगाकर मूल रोग का उपचार करें।

• लगातार सिरदर्द का स्थायी रूप से निजात पाने लिए दर्द निवारक गोलियों (एसप्रिन, एस्प्रो इत्यादि) समाधान बिल्कुल नहीं है। इन मरीजों को अवसाद प्रतिरोधी (एण्टी एपीलेप्टिक) दवाओं के कुछ माह सेवन से दीर्घकालीन सिरदर्द से स्थायी रूप से निजात मिल सकता है। अतः चिकित्सक से सलाह लेकर उपचार करवाना चाहिए। यदि दवाएँ प्रभावी नहीं होती हैं तो चिकित्सक असहनीय सिरदर्द का उपचार बाटूलिनियम रॉक्सीन के इन्जेक्शन द्वारा कर सकते हैं। हालांकि ये अत्यधिक महंगे होते हैं।

रोजाना सिरदर्द से बचाव के लिए जीवन शैली

रोजाना सिरदर्द अक्सर गलत जीवनशैली, आदतों का परिणाम होता है। यदि रोजाना सिरदर्द की समस्या है तो निम्न सावधानियाँ व्यवहार में लाएं :

• कैफीन युक्त खाद्य पदार्थों, चाय काफी, कोका युक्त ठंडे पेय, चाकलेट युक्त खाद्य पदार्थों का सेवन कम से कम करें।

• शराब, तंबाकू, सिगरेट का सेवन न करें।
• संयमित और व्यवस्थित जीवन व्यतीत करें।
• सक्रिय रहें, नियमित व्यायाम करें।
• नियमित संतुलित भोजन करें।
• समय पर सोएं और उठें, पर्याप्त समय नींद लें।
• जीवन शांति से व्यतीत करें, जीवन नीरस न बनाएं, तनाव मुक्त रहने का प्रयास करें। जीवन में मनोरंजन के लिए भी समय निकालें।
• नकारात्मक विचारों को हटाएं और सकारात्मक विचारों को रखें, इसके लिए शुभ विचारों को मन ही मन बार–बार दोहराएँ।
• प्राणायाम, ध्यान, योग का नियमित अभ्यास करें।
• यदि तनाव, अवसाद मुक्त स्वयं नहीं हो पाते तो मनोरोग चिकित्सक से परामर्श लें। व्यावहारिक मनोचिकित्सक अर्धचेतना में समाई कुंठाओं, गलत विचारों को दूर करेंगे जिससे तनाव व अवसाद दूर होगा और रोजाना सिरदर्द से छुटकारा मिलेगा।

प्रतिदिन सिरदर्द लंबे समय तक होने से जीवन की गुणवत्ता कम हो जाती है और व्यक्तित्व में बदलाव आता है। लापरवाही न करें, जीवन शैली में बदलाव लाएँ तथा उपचार करवाएँ जिससे इससे छुटकारा मिले और आप स्वस्थ, प्रसन्न तथा सफल जीवन व्यतीत कर सकें।

❂ ❂ ❂

कारों को टक्कर से बचाएगी गणित

गणित वाकई बड़े काम की है, यह हमें हादसों से बचा सकती है। दफ्तर से घर जल्दी पहुँचने में भी यह हमारी मदद कर सकती है। सुनने में यह कुछ अजीब सा जरूर लग सकता है, पर है सौ फीसदी ठीक। भारतीय मूल के दो शोधकर्ताओं ने एक ऐसा ही अनोखा गणितीय समीकरण विकसित किया है। इसका इस्तेमाल कर रोबो चालित कारों को एक–दूसरे से टकराने से बचाया जा सकता है।

भारतीय मूल के शोधकर्ता डॉ. विभ्य शर्मा और उतेश चंद ने सिडनी में हुए पैसिफिक रिम मैथमैटिक सम्मेलन में कुछ ऐसा ही कारनामा कर दिखाया है। शोध परियोजना का नेतृत्व कर रहे डॉ. शर्मा ने अपनी टीम द्वारा विकसित गणितीय समीकरणों की श्रृंखला के बारे में बताया कि इसके जरिए कारों को एक–दूसरे से टकराने से बचाया जा सकता है। दरअसल इस लंबे समीकरण के जरिए वाहनों के बीच एक ऐसा संपर्क स्थापित किया जाता है जिससे वह आपस में नहीं टकराती हैं। इस तरह यह समीकरण आने वाले दिनों में यातायात के सुचारू संचालन में मददगार होगा। इसके इस्तेमाल से गाड़ियों को चालक के बिना भी चलाया जा सकेगा। गणित के समीकरण पर आधारित तकनीक की व्याख्या करते हुए डॉ. शर्मा ने बताया रोबोटिक्स में इसका इस्तेमाल कई रोबाटों या वाहनों के एक साथ संचालन में किया जाता है। इसके चलते सभी गाड़ियां अलग–अलग चलते हुए भी एक–दूसरे के साथ जुड़ी रहती हैं और स्थिति के मुताबिक चलती हैं। इस तकनीक में एक 'केंद्रीयकृत मस्तिष्क' सभी गाड़ियों पर नजर रखता है और उनका संचालन करता है। शोध दल में शामिल साउथ पैसेफिक विश्वविद्यालय के उतेश चंद ने बताया कि इस तकनीक में सभी कारों के अपने लक्ष्य निर्धारित होते हैं और सभी उन्हें पूरा करने के हिसाब से चलती हैं। संकट की स्थिति में इनमें से एक कार लीडर का रूप ले लेती है और बाकी कारें उसका अनुसरण करती हैं।

दीपक कोहली

10

सोंजना

प्रवीर कुमार मुखर्जी*

सोंजना (सेंजना या सहिजन) एक बहुवर्षीय पेड़ है। इसे अंग्रेजी में ड्रम स्टिक या ट्रॉर्स रैडिश कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम मोंरिया ओलिफेरा है। इस पेड़ का प्रत्येक भाग बहुत फायदेमंद होता है। सोंजना के फूल का सर्दी, खांसी, प्लीहा और यकृत की बीमारी में, ज्यादा क्रीमी/चिकना होने से, टॉनिक के अन्यतम उपादान के रूप में प्रयोग करते हैं। सोंजना डाँटा (फल) एक पुष्टिकर और स्वादिष्ट सब्जी है और वात की बीमारी में भोजन के साथ लाभदायक होता है। सोंजना के बीज के तेल को बेन–ऑयल कहते हैं जिसे विदेश से आयात किया जाता है। वात के दर्द में इससे मालिश करने से आराम मिलता है। कुष्ठ रोग की पहली अवस्था में सोंजना बीज से निकले तेल की मालिश करने से फायदा मिलता है। तेल न मिलने पर बीज को पीस कर जख्म के स्थान पर लेप करने से भी आराम होता है। स्कोरोफुला रोग में सोंजना के बीज का चूर्ण नस्य की तरह लेने से आराम मिलता है। इसका तेल घड़ी की मरम्मत के काम में भी आता है।

सोंजना के फल को हम खरीद तो लेते हैं, मगर इसके पत्तों के ऊपर इतना ध्यान नहीं देते। सोंजना के पत्तों का शाक बनाकर भोजन के साथ थोड़ा–सा खाने से ओज बढ़ता है। हाज़मे के लिए इसका रस बहुत जरूरी है। यह उनके निर्गमन को बढ़ा देता है। इसके पत्तों में विटामिन ए, बी, सी, प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम, फॉस्फोरस और लोहा प्रचुर मात्रा में होते हैं। कोल, भील व मुंडा आदिवासियों का यह बहुत प्रिय खाद्य है। सोंजना के पत्तों के रस में बैक्टीरिया जन्य रोग का प्रतिरोध करने की क्षमता हाती है। बुखार व सर्दी में इसके दो–चार पत्तों का रस खाने से आराम मिलता है। दांत में दर्द या मसूड़ा फूलने पर पत्ते का क्वाथ मुंह में रखने से लाभ होता है। हिचकी आने पर ताज़ा पत्ते का रस 2 से 5 बूंद दूध के साथ दो–तीन बार खाने से ठीक जाता है। दाद में सोंजना जड़ की छाल का लेप लगाने से आराम मिलता है मगर इसको रोज़ लगाना ठीक नहीं है।

किसी भी प्रकार की मिट्टी में यह पेड़ लग सकता है, लेकिन क्षारक किस्म की दोआबा मिट्टी इसके लिए अच्छी होती है। पेड़ की शाखाएं काटकर चारा बनाया जाता है और बीज से भी चारा बनाया जा सकता है। 1 से 2 मीटर लंबी डाल काटकर कर गोबर से बांध दीजिए। कुछ दिन में कलम बन जाती है। वर्षा शुरू होने से पहले यह कलम लगानी चाहिए। पेड़ से पेड़ की दूरी 18 फुट होनी चाहिए। डेढ़–दो साल में फूल और फल (डाँटा) मिल जाता है। मगर फल आने में 5 से 6 साल लग जाते हैं।

सोंजना बहुत सहनशील होता है। अतः इसे ज्यादा पानी और खाद की ज़रूरत नहीं होती। लेकिन वर्षा से पहले सड़े हुए गोबर और बहुत गर्मी में पानी देने से फल काफी होता है। बीच–बीच में पेड़ के नीचे या पेड़ के चारों तरफ अन्य खरपतवार को साफ करते रहना चाहिए। पहले पेड़ में 80 से 90 फल मिलते हैं। बढ़ते–बढ़ते 500 से 1,000 तक फल होने लगते हैं। सोंजना पेड़ से फल तोड़ने के बाद शाखाएं काट दी जाती हैं तो उस जगह से नई डालियां निकलती हैं। उसी डाल पर ही दूसरे साल फूल और फल मिलते हैं।

फल संग्रह करने के बाद दो से तीन दिन के अंदर इसको पका लेना चाहिए। सोंजना साल में एक बार फल देता है। लेकिन नाजने नाम की इसकी एक दूसरी प्रजाति बारह–महीने फल देती है।

❂ ❂ ❂

लेखक-परिचय

1. डॉ. ए. के. चतुर्वेदी
26 कावेरी एन्क्लेव फेस II,
स्वर्ण जयंती नगर के पास
रामघाट रोड, अलीगढ़–202001 (उ.प्र.)

2. डॉ. दिनेश मणि,
पूर्व संपादक 'विज्ञान'
33/3, जवाहर लाल नेहरू मार्ग,
जार्ज टाउन, इलाहाबाद

3. डॉ. विजयकुमार उपाध्याय
कृष्णा एन्क्लेव, राजेंद्रनगर,
पो. जमगढिया, बोकारो,
झारखंड–827013

4. डॉ. वीरेंद्र कुमार
सस्य विज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली

5. डॉ. वाई. एस. शिवे,
सस्य विज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली

6. डॉ. पुरुषोत्तम पोद्दार,
अध्यक्ष भौतिकी विभाग,
जी.वी.एम. कॉलेज, गया

7. डॉ. शंकरलाल,
राष्ट्रीय परामर्शदाता (बीज),
राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन,
राष्ट्रीय बीज निगम, पूसा, नई दिल्ली

8. श्री सतीशचंद्र सक्सेना,
पूर्व उप निदेशक,
शब्दावली आयोग (बी–बी)
35 एफ, जनकपुरी, नई दिल्ली

9. डॉ. नवीन कुमार बौहरा,
प्लाट 389, गली नं. 10,
मिल्कमैन कॉलोनी, पाल रोड, जोधपुर

10. डॉ. जे. एल. अग्रवाल
3, ज्ञान लोक, मयूर विहार
शास्त्रीनगर, मेरठ–250004 (उ.प्र.)

11. डॉ. आर. एस. सेंगर
सह प्रोफेसर, सरदार वल्लभ भाई पटेल
कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
मेरठ–250110 (उ.प्र.)

12. डॉ. रेशू चौधरी,
जैव प्रौद्योगिकी महाविद्यालय,
सह प्रोफेसर, सरदार वल्लभभाई पटेल
कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
मेरठ–250110 (उ.प्र.)

13. डॉ. दीपक कोहली
5/104, विपुल खंड,
गोमती नगर, लखनऊ

14. प्रवीण कुमार मुखर्जी
ए–ई 528, साल्ट लेक,
कोलकाता

4954 HRD/10—7

विविध

आयोग के प्रकाशन

शब्दसंग्रह, शब्दावलियां

भौतिकी

भौतिकी शब्द संग्रह	119.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	45.00
इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा कोश	22.00
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00
भौतिकी परिभाषा कोश	700.00

गृह विज्ञान

गृह विज्ञान शब्द-संग्रह	600.00

कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्यागिकी

कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली	57.00
कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश	102.00
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह	231.00

रसायन

रसायन शब्द संग्रह	592.00
इस्पात एवं अलौह धातुकर्म शब्दावली	55.00
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश	25.00

वाणज्यि

वाणिज्य शब्दावली	259.00
पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली	79.00
वाणिज्य परिभाषा कोश	24.00

रक्षा

समेकित रक्षा शब्दावली	284.00

गुणता नियंत्रण

गुणता नियंत्रण शब्दावली	38.00

भाषा विज्ञान

भाषा विज्ञान शब्दावली	113.00
(अेग्रजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	
भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 1)	89.00
भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 2)	59.00

जीव विज्ञान

कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00
पर्यावरण विज्ञान शब्द-संग्रह	381.00
प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00
सूक्ष्म जैविकी परिभाषा कोश	45.00
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00

लोक प्रशासन

लोक प्रशासन शब्दावली	52.00

गणित

गणित शब्द-संग्रह	143.00
गणित परिभाषा कोश	203.00
सांख्यिकी परिभाषा कोश	18.00

भूगोल

भूगोल शब्द-संग्रह	200.00
भूगोल परिभाषा कोश	10.00
मानव भूगोल परिभाषा कोश	18.00
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00

अनुप्रयुक्त विज्ञान

प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
वानिकी शब्द-संग्रह	440.00

4954 HRD/10—8 A

मनोविज्ञान

मनोविज्ञान परिभाषा कोश	9.50
मनोविज्ञान शब्दावली	247.00

इतिहास

इतिहास परिभाषा कोश	20.50

प्रशासन

प्रशासन शब्दावली	20.00
प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) प्रकाशनाधीन	

शिक्षा

शिक्षा परिभाषा कोश खंड-1	13.00
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-2	99.00

आयुर्विज्ञान

आयुर्विज्ञान परिभाषा को (शल्य विज्ञान)	338.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00

समाज शास्त्र

समाज कार्य परिभाषा कोश	16.25
समाज-शास्त्र परिभाषा कोश	71.40

नृविज्ञान

सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00

बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह :

बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, खंड 1	87.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, खंड 2	87.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान (हिंदी-अंग्रजी)	236.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह मानविकी और सामाजिक विज्ञान खंड 1, 2	292.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	350.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, कृषि विज्ञान	278.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान : आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, शारीरिक नृविज्ञान	239.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह: मुद्रण इंजीनियरी	48.50
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह: इंजीनियरी (सिविल, विद्युत, यांत्रिकी)	340.00
बृहत् परिभाषित शब्द-संग्रह : पशु चिकित्सा विज्ञान	82.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह: प्राणि विज्ञान	311.00

भू-विज्ञान

भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00
सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
भूभौतिकी शब्दावली	67.00
शैल्यविज्ञान शब्दावली	82.00
खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
भूविज्ञान परिभाषा कोश	63.00
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
शैल्यविज्ञान परिभाषा कोश	153.00
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
खनन एंव भूविज्ञान शब्द-सग्रह	32.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्दसंग्रह	15.00
जीवाश्मविज्ञान शब्दावली	129.00

कृषि

रेशम विज्ञान शब्द-संग्रह	50.00
कृषि कीटविज्ञान परिभाषा कोश	75.00

4954 HRD/10—8 B

सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
मृदाविज्ञान परिभाषा कोश	77.00
इंजीनियरी	
रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह	51.00
विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश	94.00
सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	10.00
वनस्पति विज्ञान	
वनस्पति विज्ञान शब्द-संग्रह	86.00
वनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पुरावनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश	80.00
दर्शनशास्त्र	
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 1)	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 2)	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 3)	136.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00
पुस्तकालय विज्ञान	
पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा कोश	49.00
पत्रकारिता	
पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली	12.25
पुरातत्व विज्ञान	
पुस्तकालय विज्ञान शब्दावली प्रकाशनाधीन पुरातत्वविज्ञान परिभाषा कोश	509.00
कला	
पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	343.00
प्रबंधविज्ञान परिभाषा कोश	170.00
अर्थशास्त्र	
अर्थशास्त्र परिभाषा कोश	117.00
अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65
अन्य	
अन्तर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एंव टेलीविजन परिभाषा कोश	200.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन शब्दावली	75.00
मुद्रणाधीन	
वनस्पति विज्ञान मूलभूत शब्दावाली	
पर्यावरण विज्ञान मूलभूत शब्दावली	

संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
समद्री यात्राएं	79.00
विश्व दर्शन	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन	17.00
कोयला: एक परिचय	425.00
रत्न विज्ञान : एक परिचय	115.00
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं प्रबंधन	23.00
भारत में गैस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00
2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
भारत में प्याज एंव लहसुन की खेती	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग	60.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00
वैज्ञानिक शब्दावली: अनुवाद एवं मौलिक लेखन	34.00

मृदा-उर्वरता	410.00
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण	105.00
पशुओं के कवकीय रोग: उनका उपचार एवं नियंत्रण	93.00
पराज्यमितीय फलन	90.00
सामाजिक एंव प्रक्षेत्र वानिकी	54.00
विश्व के प्रमुख धर्म	118.00
पृथ्वी : उद्भव और विकास	470.00
पृथ्वी से पुरातत्व	40.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00
द्रवचालित मशीन	66.50
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	214.00
मृदा एंव पादप-पोषण	367.00
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00
विश्व के प्रमुख धर्मो में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00
समकाली भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतक: तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन	153.00
पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन	367.00
स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	167.00
भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	343.00
भविष्य की आशा : हिंद महासांगर	154.00
भारतीय कृषि का विकास	155.00
विकास मनोविज्ञान भाग-1	40.00
विकास मनोविज्ञान भाग-2	30.00
कृषिजन्य दुर्घटनाएं	25.00
इलेक्ट्रॉनिक मापन	31.00
वनस्पतिविज्ञान पाठमाला	16.00
इस्पात परिचय	146.00
जैव-प्रौद्योगिकी: अनुसंधान एवं विकास	134.00
विश्व के प्रमुख दार्शनिक	433.00
प्राकृतिक खेती	167.00
हिंदी विज्ञान पत्रिकारिता: कल, आज और कल	167.00
मानसून पवन: भारतीय जलवायु का आधार	112.36
हिंदी में स्वतंत्रता-परवर्ती विज्ञान लेखन	280.00

ग्राहक फार्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली- 110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए .....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .....दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

.....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्कः	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रू 14.00	पौड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रू 50.00	पौड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रू 8.00	पौड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रू 30.00	पौड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करें:

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री..... इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के ..... विभाग के /छात्र/की छात्रा है

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25% की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी की जाती है। अपेक्षित धन राशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T. New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती है। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉवर्डिग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मागकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नही होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंच है तो उसका दायित्व आयोग पर नही होगा।

10. सामान्य: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नही होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	प्रकाशन नियंत्रक प्रकाशन विभाग, (शहरी मामले व रोजगार मंत्रालय), सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	किताब महल प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001
3.	पुस्तक डिपो प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

4954 HRD/10– MGIPRRND—1000 Copies

© भारत सरकार

प्रकाशन-नियंत्रक

जुलाई–सितंबर-2010

पी. सी. एस. टी. टी. (7-9) 10

1,000

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
2011